रूपलहरी।

अनुवादक

पं० पारसनाथ त्रिपाठी,

काव्यतीर्थ।

प्रकाशक

हरिदास एण्ड कम्पनी।

कलकत्ता

२०१ हरिसन रोडके नरसिंह प्रेसमें,

बाबू रामप्रताप भार्गव द्वारा

मुद्रित।

सन् १९१९

दूसरी बार १०००] मूल्य ।॥)

मुखबन्ध।

मानव-हृदयपर छोटी-छोटी कथाओंका कभी-कभी बड़ाही असर पड़ता है; यही कारण है कि कथाके स्वरूपमें शिक्षा देनेकी प्रथा प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। इसके प्रमाण-स्वरूप संसारकी सर्वश्रेष्ठ भाषा संस्कृतके हितोपदेश, पञ्चतन्त्र, कथासरित्सागर प्रभृति ग्रन्थ प्रस्तुत हैं। अन्यान्य भाषाओंके ऐसे-ऐसे ग्रन्थोंका अनुवाद कर हिन्दीसाहित्यको भी लोग पुष्टि कर रहे हैं—उसके एक अपूर्ण हिस्सेको पूर्ण करनेके प्रयत्नमें लग रहे हैं। यद्यपि हिन्दीसाहित्यमें अन्यान्य विषयक ग्रन्थोंकी अपेक्षा औपन्यासिक ग्रन्थोंका अभाव नहीं है—प्रायः हिन्दीसाहित्यका औपन्यासिक भण्डार अब वृद्धि पर हो चला—यह भी उसकी भावी उन्नतिका द्योतक चिन्ह-स्वरूप है; परन्तु उपन्यासके—आख्यायिकाओंके—ऐसे बहुत कम ग्रन्थ हैं जिनका मानवहृत्पट पर अच्छा प्रभाव पड़े। प्रायः ऐसेही उपन्यासोंकी संख्या अधिक है, जिनमें केवल 'आशक-माशूक'की कहानीही अधिक रहती है और समाज पर भी जिसका बुरा प्रभाव पड़नेकी सम्भावना है—प्रायः बुरा प्रभाव पड़ते देखा भी जाता है।

कनकलता ।

"श्री चरणेषु—

"अपनी शादी होनेके बाद मैं आपको यह पहला पत्र लिख रही हूँ। हाँ, आपने मुझको दो तीन पत्र लिखे थे; किन्तु उन पत्रों का उत्तर मैंने अब तक नहीं लिखा। आपके पत्रोंका उत्तर मैंने क्यों नहीं दिया? आज इसी प्रश्नका उत्तर मैं आपको दूँगी।

"यद्यपि हम दोनों शुभ प्रेमकी जञ्जीर से जकड़े हुए हैं, तथापि आपस की इच्छा-अनिच्छाकी बात, रुचि-प्रवृत्तिकी बात, पहले हम दोनोंमेंसे किसी ने किसी से नहीं कही। हम लोगोंके देशके हिन्दू-समाजमें यह रीति नहीं है। हम लोगोंके (वर-कन्याके) माता-पिता, कुछ भी आपसमें ठहरा कर—रुपये-पैसे की बात करके शादी कर डालते हैं।

वर कन्याओंमें विवाहके पहले देखा-देखी भी नहीं होती, तथापि आप एकबार शादीके पहले अपने मित्रोंके साथ छिपे-छिपे मुझे देखनेके लिये आये थे। उस समय मुझे देखकर आप समझ गये कि मैं सुन्दरी हूँ। मेरी सुन्दरताकी बात शायद आपने अपने मित्रोंसे भी कही थी।

"जिस समय मेरी शादी हुई उस समय मैं सोलह वर्ष की थी; किन्तु आपसे मेरे दलालोंने मेरी उम्र तेरह वर्ष की बताई थी। इस झूठी बातके लिये मैं जवाबदेह नहीं। आप इस बातको भली भाँति जानते हैं कि, एक मेम साहिबा मुझे पढ़ाती हैं। वे अङ्गरेजों की औरत होने पर भी— पादरिन् होने पर भी, मेरी अध्यापिका हैं, मेरी इष्टदेवी की तरह हैं। उन्हीं की आज्ञासे मैं आपकी सेवामें यह पत्र लिख रही हूँ। आशा है, आप मेरी इस धृष्टताको क्षमा करेंगे। आप उच्च शिक्षासे शिक्षित और उदार स्वभावके सज्जन हैं। आप ऐसे महानुभावोंसे यदि कोई अपने हृदयकी बात (वह चाहे जैसी हो) सरल भावसे कहे, तो उसे कुछ बुरी नहीं समझना चाहिये; आशा है, मेरी दुरवस्थाके विषयमें विवेचना कर मुझे क्षमा करेंगे।

"अपनी शादीके बहुत दिन पहले ही से मैं श्रीयुत कमलाप्रसाद को मन-ही-मन अपना पति बना चुकी हूँ। इस काममें सहायता एक तो परम पिता परमात्मा और दूसरे मेरी अध्यापिकाने दी है। कमला बाबू मेरे मन की बात

नहीं जानते, सो भी नहीं, वे मेरे साथ अपनी शादी होनेपर सुखी होते एवं मुझे अपनी स्त्री बनानेके लिये शुभ समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। किन्तु वे कुलीनता की मर्यादासे रहित हैं एवं दरिद्र-सन्तान हैं; यही कारण है कि, मेरे पिताने उनके हाथमें मुझे समर्पण नहीं किया। आप कुलीन हैं, धनाढ्य हैं, तथा पढ़े लिखे भी हैं। यही कारण है कि, मेरे पिताने, दश हज़ार रुपये खर्च कर, अनेक कष्ट सहकर, आपको अपना दामाद बनाया है। आप लोगों की हिन्दू-समाजकी दृष्टिमें तो मैं आपकी स्त्री हूँ, और आप मेरे स्वामी हैं; किन्तु जो सम्पूर्ण समाजोंके सारभूत हैं—जो सम्पूर्ण जातियोंके इष्टदेव हैं—उन दयामय परमेश्वरके सामने मैं कमला बाबूकी स्त्री हूँ। आपके प्रेम पत्रका उत्तर देनेसे, आपके प्रेम आलिङ्गनका प्रति-आलिङ्गन देनेसे मैं व्यभि-चारिणी साबित हूँगी। राजा की आज्ञा—समाज का शासन सभी आपके अनुकूल हैं; आप मेरी देह लेकर अपनी इच्छाके अनुसार सभी कुछ कर सकते हैं, परन्तु मैंने तो अपने दिलकी बात आपसे कह दी, जो दयामय परमात्मा आपके हृदयमें सदैव निवास करते हैं; वेही आपको सुबुद्धि देंगे, वेही आपको सत्पथ दिखला देंगे, मुझे इसका पूरा भरोसा है। इति।”

क्षमा-प्रार्थिनी

“कनक-लता।”

(२)

भाई पाठक! मेरी हँसी मत उड़ाना, यही मेरी स्त्रीका पहला प्रेम-पत्र है। बड़ी श्रद्धासे मैंने कनकलताके साथ विवाह किया था, उसकी अनुपमेया रूपमाधुरी देखकर, उसके हाथसे हारमोनियमका बजाना, उसके कोकिल-विनिन्दित कण्ठका गाना सुनकर, उसके मुखसे कालिदास, बिहारी एवं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कविता सुनकर मैं अपने आपको भूल जाता था। उस समय मुझमें योग्यायोग्यका विचार, इहलोक परलोकका डर कुछ भी नहीं रहता था। अपने हृदय-स्वर्गके नन्दन-वन को वनदेवी बनानेके लिये, अपने निष्कलङ्क प्रीति-पर्य्यङ्क पर मैंने कनक-लताको बैठाया था। भला, उसकी सुन्दरताका वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ, वे कजरारी खञ्जन-मद-गञ्जन आँखें, वे वार्निश किये हुए गुलाबी गाल, वे पतले-पतले सुधारस-परिप्लावित अधर हृदयको बरबस अपनेमें अटका ही लेते हैं। जिस समय गंगाकी धाराके सदृश ऊँचे-नीचे हुए केश गर्दनसे होते हुए पैर तक लटके रहते हैं, उस समय साफ़ मालूम होता है कि, मानों राहु-कवलित अर्द्ध चन्द्र शरीर धारण किये है। और वह देह लतिका! उसको तो बात ही क्या? वह तो वास्तवमें एक स्वर्ण-लतिका ही ठहरी! डाल पत्ते वाली, कुसुम-रूपी गहनेसे भूषित लता जिस प्रकार धीर पवनसे काँपती रहती है, उसी प्रकार कनक लता की भी देहलता

लावण्य कुसुमाभरणा हो, सुहागसे धीरे धीरे मानों सदा कांपती रहती है।

मेरी कनकलता ने मुझे इस प्रकारसे पत्र क्यों लिखा? भगवन्! इस समय मैं क्या करूँ? हाय! ऐसा पत्र पाकर मेरा कलेजा टूक टूक क्यों नहीं हो जाता है? मैं क्यों जी रहा हूँ? पृथ्वी! मुझे अपनेमें जगह दे। हा! मैं तो उस रूपका मोह कदापि नहीं छोड़ सकता, मैं उस रूपके लिये सर्वस्वको तिलाञ्जलि दे सकता हूँ। मेरी वकालत गयी, इसीलिये मेरा उपार्जन भी बन्द हुआ, लोगोंसे पहले की तरह मिलना-जुलना भी नहीं होता, माता पिताकी सेवा भी नहीं करता—हाय! मेरा इहलोक परलोक दोनों गये! प्रभो! मेरे इसी सौन्दर्य्यके कनक-कटोरे में किसने हलाहल गिरा दिया? मेरे सुखके कामिनी कुञ्ज में इस प्रकारका भयङ्कर सर्प किसने छोड़ दिया? हाय! मेरे विलास-चन्द्र की गोदमें कलङ्क का शशाङ्क किसने बिठला दिया?

क्या मैं पागल होजाऊँगा? अब पागल होनेमें देरी ही क्या है? जबसे मुझे चिट्ठी मिली है, तबसे आँखोंमें नींद नहीं है, अन्नमें रुचि नहीं है! अपने साज बाज का ठिकाना नहीं है, मित्रोंसे आनन्दकी बातचीत नहीं है और कर्त्तव्या-कर्त्तव्यका ज्ञान भी नहीं है। वज्र-सूचि-वेध की तरह इस ज्वालाने मेरे शरीरमें प्रवेश कर मुझे खाक कर डाला, मेरे सरस हृदयको सुखाकर बालूका-पूर्ण भयङ्कर मरु भूमिमें

परिणत कर दिया है। तो फिर अब मेरे पागल होनेमें देरी ही क्या रही? मैं वास्तवमें अब पागल हो गया हूँ। वह अध्यापिका रमणी—वह क्या राक्षसी है, या पिशाचिनी है? वह मेरे सुखकी राहमें श्मशानका अत्यन्त उष्ण चिताभस्म क्यों बिछा रही है? सिवाय मरनेके, अब मेरी प्राणरक्षा नहीं।

(२)

पागलोंकी तरह चारों ओर घूमता-घूमता मैं अपने लँगोटिया यार सिद्धेश्वर बाबू के यहाँ गया, उन्हें पत्र पढ़कर मैंने सुना दिया। पत्र सुनकर वे एक दिल्लगी की हँसी हँसे। मुझे उनकी इस हँसीसे बड़ा ही क्रोध हुआ, परन्तु करता क्या? भीतर-ही भीतर कुढ़कर रह गया। मेरे चेहरेको देखकर मेरे हृदय की बात वे ताड़ गये। हँसकर बोले—"अवधेश! इतना घबराते क्यों हो? पत्रमें तो इतनी घबराहट उत्पन्न करानेवाली कोई बात है नहीं। तुम कनकलताको तो त्याग सकते नहीं। यदि तुमसे त्याग करने का प्रसंग छेड़ा जाय, तो तुम आत्महत्या भी कर बैठो तो कुछ आश्चर्य नहीं और कनकलता भी त्याग करने के योग्य नहीं है, वह अत्यन्त सुन्दरी एवं शिक्षिता है। उसके पत्रको सुनने से मुझे विदित हो गया कि, वह भी तुम्हारे ही सदृश रूप-सुधा एवं भाव विह्वला है। कमला बाबू सुन्दर युवा पुरुष हैं, उनके चेहरे में कुछ ऐसी शक्ति है कि, जिसे देखकर स्त्रियाँ आप-से-आप उनपर निछावर हो सकती हैं।"

मैं ने दीनभावसे कहा—"तो इसका उपाय ?"

सिद्धे०—उपाय तो है ! अपने पितासे कहकर तुम अपने घर पर कनकलताको बुलवाओ, परन्तु उसे अपने साथ कदापि न रक्खो। चौबेपुरके अपने बगीचेवाले बँगलेमें उसे रक्खो। अपनी बूढ़ी चाचीको उसके साथ रहनेके लिये कहो। दास-दासी सब पूर्ववत रहें। तीन महीने तक उस बँगले पर तुम्हारा छोटा भाई, बहनोई, प्रभृति कोई युवक न जाने पावे। तुम भी दिन-रातमें कभी-कभी एक बार आया करना और देखते रहना कनकलता जिसमें कमला बाबूके यहाँ पत्र न लिखने पावे और उस अध्यापिकासे कनकलताकी भेंट न हो।

मैं—इससे क्या होगा ? ज़बरदस्तीसे क्या कोई प्रेमी बनाया जा सकता है ? सम्भव है, ज़बरदस्ती करनेसे कनक-लता कोई दुर्घटना कर बैठे—आत्महत्या भी कर बैठे, तो कुछ आश्चर्य नहीं।

सिद्धेश्वर—तुम एकदम पागल हो गये हो, इसीसे भली भाँति सब बात नहीं समझते। कनकलता केवल लिखना-पढ़ना जानती है, केवल गाना-बजाना जानती है, और अध्यापिकाके निकट केवल नाटक उपन्यास पढ़ी है। काव्य-गाथा पढ़ कर वह विलायती फ्री लव (Free love) का मर्म्म जानती है। कनकलताको धर्म-कर्म्मकी शिक्षा नहीं मिली है, वह समाजका तत्त्व भी नहीं जानती, वह कर्त्तव्य

अकर्त्तव्य का विचार भी नहीं कर सकती; किन्तु कनकलता हिन्दू गृहस्थकी लड़की है, वह हिन्दू-संसारमें पाली पोसी गया है। कनकलताकी प्रकृति हिन्दू उपादानसे गठित है, कनकलताका हृदय हिन्दुत्वसे पूर्ण है। यह पल नयी जवानीकी प्रथम उमंगसे, नयी शिक्षाकी प्रथम ताड़नासे और रूप-विलासके मोहसे लिखा गया है। यदि कुछ दिनके लिये वह स्वतन्त्र भावसे रखी जाय, यदि उसकी विमूढ़ हिन्दू-प्रकृतिके उन्मेषके लिये चेष्टा की जाय, तो वह फिर तुम्हारी ही होगी। तुम्हारी चाचीने संसारका रंग ढंग देखनेमें अपने केश पकाये हैं। वे उसके साथ रहकर सदैव अच्छी २ बातें सिखाती रहेंगी और बीच बीचमें तुम भी कभी-कभी अपनी झलक दिखा आना। कनकलताके यौवन की प्रखर धाराके सरल मार्गमें विकृत भावकी रुकावट पड़ गयी है, तुम्हें कभी-कभी देखते-देखते युवतीकी स्पृहाका प्रवाह तुम्हारी ही ओर प्रवाहित होगा—तुम्हारी कनकलता तुम्हारी ही होगी।

मैं—क्या इस उपायसे कनकलताके हृदयमें मेरे प्रति अनुराग हो सकता है? मैं केवल कनकलताको ही नहीं चाहता, किन्तु उसके अनुरागका भी भिखारी हूँ।

सिद्धेश्वर—मुझे तो ज्ञात होता है कि, अँगरेजी पढ़कर तुम्हारा भी मस्तिष्क विकृत हो गया है। अँगरेज़ोंके उपन्यास-नाटकोंमें जिस प्रकारकी अनुराग कथा लिखी हुई है,

उस प्रकारका अनुराग हम लोग शाक फल मूल खानेवाले पूर्व-देशीय मनुष्योंमें कहाँ? विशेष वार्ता यह है कि, कमला बाबूके प्रति कनकलता का जो अनुराग तुम देखते हो, वह अनुराग नहीं, बल्कि सामान्य ख्याल मात्र है। रात-दिन प्रेम-विषयक उपन्यास नाटकोंके पढ़नेसे नव-युवतियोंका हृदय एक प्रकारसे कुछ विकृत हो जाता है। इस विकारकी दवा है, किन्तु स्वाभाविक विकृतिकी दवा नहीं है। कनक-लताके इस विकारको दूर करनेके लिये जैसे दवा की आवश्यकता है, वैसीही मैंने बता दी। तुम तीन महीने तक धैर्य धारण करो।

मैं दुराशाका एक दीर्घ निःश्वास लेकर भगवान्‌का स्मरण करता हुआ घर आया और सिद्धेश्वर बाबूकी उपदेशानुसार सारी व्यवस्था की।

(४)

दो महीने बीत जाने पर आज मेरा सुप्रभात हुआ है। दैव मुझ पर प्रसन्न हुआ है। आज कनकलताका एक पत्र मुझे मिला।—

"हृदय वल्लभ!

"इस जन्ममें क्या मेरे घोर पापका प्रायश्चित्त नहीं हो सकता है? मेरी समझमें मेरा प्रायश्चित्त धधकती हुई आग है, उसी धधकती हुई आगकी ज्वालाका अंग मैं बन रही हूँ। मैं नहीं जानती कि, पिताने किस कुलग्नमें मेरे पढ़नेकी

व्यवस्था की थी, किस कुसमयमें मैं मिस जान जैसी अध्यापिकाके हाथ पड़ी। अपने सोनेका संसार, सुखका घर, राजा के समान ससुर, अन्नपूर्णाकी ऐसी सास, इन्द्रतुल्य स्वामी पाकर मैंने उनकी उपेक्षा की!

"हृदयेश्वर! भला इसमें मेरा अपराध ही क्या है? मुझे जैसी शिक्षा दी गई, वैसीही मैं शिक्षिता हुई, जैसा मुझे समझाया गया वैसाही समझी और जिसे सामने पाया उसे ही अपना समझकर आदर किया। मैं तो क्षुद्र, एक स्त्रीमात्र हूँ। अबला विह्वला हूँ, भला मेरे अपराधका इतना कठिन प्रायश्चित्त क्यों? नाथ! दासीने तो युवतीसुलभ कपट-व्यवहार आपसे किया नहीं। इस अभागी बुद्धिमें उस समय जो अच्छा लगा, तुम्हारी सेवामें लिख भेजा।

"तुम मेरे स्वामी हो, तुम्हारा गौरव मेरी दृष्टिमें देवताओंकी अपेक्षा भी अधिक है। मेरे इहलोक-परलोकके सर्वस्व तुम्हीं हो। तुमने उस समय मुझ पर दया कर मेरा त्याग नहीं किया, यही कारण है कि मैं इस समय भी कुलाङ्गनाके पवित्र आसनकी अधिकारिणी हूँ। जिस दयाके प्रभावसे तुमने उस दुःसमयमें मेरी रक्षा की, क्या उसी करुणाकी दृष्टिसे अपने पैरके नज़दीक इस अभागिनीको थोड़ी जगह नहीं दोगे? नाथ! मैं कङ्गालिनी हूँ, अभागिनी हूँ, वनवासिनी हूँ। भला, मुझ अनाथिनी पर इतनी अकृपा! प्रभो! सन्ध्या होनेके कुछ पहले जिस समय मैं

अपने झरोखेमें बैठी रहती हूँ, उस समय देखती हूँ कि तुम बगीचेमें टहला करते हो, उस समय हृदयमें बड़ी साध होती है कि एक बार दौड़ कर तुम्हारे पैरों पड़ूँ, और तुम्हारे चरण-कमलोंको हृदयमें धारण कर रोते-रोते अपने मनकी सारी व्यथा तुमसे कह सुनाऊँ। परन्तु मैं स्त्री हूँ, मुझे रमणी-सुलभ लज्जा आकर मेरे इच्छा मार्गमें बाधा देती है। मेरे हृदयकी वासना हृदय ही में उन्मीलित होकर हृदयही में विलीन हो जाती है।

"धिक्कार है इस लिखने पढ़नेको। मैं यदि लिखना पढ़ना न जानती, मैं उपन्यास नाटक यदि न पढ़ती, तो मैं उस पुष्प-शय्याकी रातसे ही तुम्हारे सम्पूर्ण सुखकी—अधिकारिणी होती।

"रक्षा करो, नाथ! मेरी रक्षा करो। तुम्हीं यदि मेरी रक्षा नहीं करोगे, तो फिर मेरी रक्षा करनेवाला दूसरा है ही कौन? तुम मेरे लज्जा निवारक विपद्‌भञ्जन हो, तुम मेरे इस तुच्छ नारी-जीवनके त्राण कर्त्ता हो, मैं तो तुम्हारी दासीकी भी दासी होने योग्य नहीं हूँ। किन्तु, केवल एक तुम्हारी दया पानेसे मेरा इहकाल और परकाल दोनों बन जायंगे।

आपकी दासी—

"कनक-लता"

पत्र पढ़ा। पत्र पढ़नेके समय आँखों पर विश्वास नहीं हुआ—बुद्धिपर विश्वास नहीं हुआ—हृदय पर उस समय विश्वास नहीं कर सका। सोचने लगा—"यह क्या! क्या मैं वास्तवमें इस समय जीवित हूँ? यह प्रेत-पुरीको कोई अलौकिक घटना तो नहीं है? और सिद्धेश्वरनाथ! क्या वह देवता है या भविष्यदर्शी कोई ऋषि तो नहीं है? मैं दौड़ता हुआ गया और पत्रको सिद्धेश्वर बाबूके पैरों तले रख दिया। पत्र उठा कर वे पढ़ने लगे। पत्र पढ़नेके बाद मेरी ओर देख कर फिर वही हँसी। उस हँसीको देखकर मैं आपेमें न रहा। कुछ समय पूर्व उस भयङ्कर पत्रको पढ़कर सिद्धेश्वरनाथ हँसा था, आज इस प्राण मन पागल करनेवाले पत्रको पढ़ कर वह फिर हँसा। उद्भ्रान्त उन्मत्त होकर मैंने कहा—"इस प्रकारसे हँसते क्यों हो भाई? बार बार इस दशामें मुझे देख एवं मेरी स्त्रीका पत्र पढ़ कर तुम्हारे हँसनेका क्या कारण है?"

सिद्धेश्वर—इतने चञ्चल मत हो, दवाने काम किया है, यही देखकर मैं हँस रहा हूँ। पर रोग केवल कनकलता को ही नहीं है, तुम भी रोगी हो। कनकलताके साथ-साथ तुम्हारी भी दवा हो रही है।

मैं—तुम्हारी ये सब बातें मेरी समझमें नहीं आतीं। इस समय तो मैं तुम्हें भी नहीं पहचान सकता, तुम्हारी भाषा भी मेरी समझमें नहीं आती।

सिद्धेश्वर—न समझनेके लिये ही तो कह रहा हूँ। जिस दिन तुम अपनी शादी करनेके लिये जा रहे थे, उस समय माताने पूछा था "बेटा! तुम किस को लाने जाते हो?" इसका उत्तर तुमने दिया था—"माँ! तुम्हारी दासी लानेके लिये जा रहा हूँ।" अब जो बात छिड़ गई तो मैं कहता हूँ कि, माँ से तुमने यह झूठी बात कही थी।

मैं—क्यों भाई?

सिद्धे०—माँ की दासी लानेमें इतनी विड़म्बना नहीं करनी पड़ती। कनकलताके रूपसे मुग्ध होकर उसकी रूपकी पूजा करनेके लिये तुम गये थे, इसीसे इसे तुम्हारी विड़म्बना कहते हैं। हिन्दू संसारमें—देवताके संसारमें, साकार सजीव देव-देवी पिता और माता निवास करते हैं। तुम अशक्यको शक्य करना चाहते थे, यही कारण है कि तुम्हें यह नरक यन्त्रणा भोग करनी पड़ी। अभी कुछ दिन और ठहरो, जिस समय कनकलता सास और ससुर की सेवाके लिये अस्थिर होगी, उस समय तुम कनक लता को पाओगे।

(५)

आज मेरा सुप्रभात हुआ है। आजकी ऐसा दिन मानो मेरे इस जीवनमें फिर कभी नहीं मिलेगा। मेरी माँ चांबेपुर के बगीचेवाले मकानमें आयी हैं। कनकलता उनका पद-सेवा कर रही है। माताने मुझे बुलाया। मैं उस मकानमें

गया, जहाँ पर माँ की सेवा कनकलता कर रही थी। जाकर देखा—कनकलता माताके एक पैर को दबाती हुई बैठी है। माँने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे अपनी दाहिनी जाँघ पर बैठाया, और हम दोनोंकी चिबुकोंपर अपने दोनों हाथ रखकर कहा—"तुमलोग लड़की-लड़कियोंकी तरह आपसमें झगड़ा किया करते हो। मैं अपने घरकी लक्ष्मीको अपने घर लिवा जाती हूँ। भगवान् करे, मेरे इस जीवनको साध मिटे।"

* * * *

उसी दिन रात को मैं हँसता-हँसता अपने घरमें गया। छः महीनेके बाद अपने शयनागारमें फिर मेरा अधिकार हुआ। कुछ देरके बाद कनक-लता भी आयी। आतेही मेरे पैरोंको अपनी छातीमें लगा, श्रावण मास की वृष्टि की तरह आँखोंसे आँसू गिराती गदगद कण्ठसे कहने लगी—"नाथ! मेरे अपराधोंको क्षमा करो, मेरे अपराधोंको क्षमा करो।"

अब मुझसे रहा नहीं गया; मेरे यौवन-सुखकी अधिष्ठात्री देवी, मेरे सौभाग्य-सुख की ताली, भला इस तरह मेरे चरणों के नीचे कैसे रह सकती है?

मैंने अपनी दोनों बाँहें फैलाकर अपनी कनकलता को गोदमें ले लिया। बस, मेरे इहकाल का सुख, मेरे मानव जीवनका संसार, मेरा मनुष्यत्व, मेरे परलोकको पुण्य-गठरी—सब ज्यों की त्यों बनी रह गयी।

कालिन्दी ।
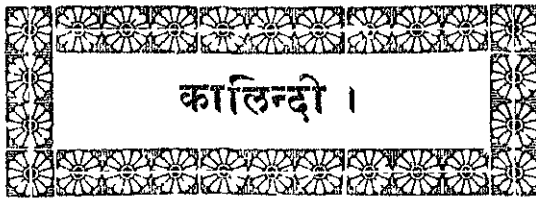
(१)

"बंगालमें कौन स्त्री सुन्दरी नहीं है? सभी हैं। बंगालके मर्द तो घूँघटवाली स्त्रियोंको सुन्दरता का 'खज़ाना ही समझे हुए हैं; किन्तु हम लोग चिकके भीतरसे—गाड़ीके भीतर झिलमिलीसे—थियेटरमें जालीदार रँगे हुए परदोंके अन्दरसे, मर्दोंको देखती हैं—अच्छी तरहसे मनोयोग-पूर्वक; देखती हैं—अकेलेमें, आराम करनेके समय, मन-ही-मन एकाग्रचित्त से देखती हैं—देखकर अपने साथ समता करते-करते समालोचना भी करती हैं। अतएव हमलोग जानती हैं कि बंग-प्रदेशमें कितने पुरुष सुन्दर चरित्रवाले और कितने कुत्सित हैं; किन्तु भला निगोड़े मर्द किस प्रकार समझेंगे, कि, हम स्त्रियोंमें कितनी सुन्दरी हैं, कितनी अच्छे चाल-चलनवाली हैं, और कितनी व्यभिचारिणी हैं? वे लोग तो गंगा नहानेके समय हमलोगोंको एकबार एक नज़र विद्युत-प्रभाके समान देखने की चेष्टा करते हैं; किन्तु जिस तरह

देखना चाहिये, जिसे देखनेसे योग्यायोग्य का विचार होता है उस तरह नहीं देखते। वे लोग तो—

"कि जानि कि घूम घोरे,
कि चोखे देखेछि तोरे"

इसी भावसे हमको देखते हैं, और केवल, सुन्दरी देखते हैं। एक एक पुरुष हम लोगोंके सौन्दर्य्यमें इतने पागल हो जाते हैं कि, पुरुषको ही स्त्रीकी पोशाकमें सुसज्जित कर उसको सुन्दरतामें मग्न हो भूमा करते हैं।

"इस प्रदेशमें एक प्रकारके और भी मनुष्य रहते हैं। वे घूंघट पर चिढ़कर अवरोध-प्रथाके ऊपर अभिमान कर कहते हैं कि—स्त्रियाँ सुन्दरी नहीं होतीं, सौन्दर्य्य पर स्त्रियोंका हक नहीं है। पुरुष ही सुन्दर होते हैं। इन लोगोंके मुखियाका कथन है कि, पुरुषोंके दाढ़ी होती है—मूँछें होती हैं—सिंहके समान केश होते हैं—पुरुषोंका स्वर कोकिलको मात करता है—पुरुषोंके शिरके बाल अत्यन्त सुन्दर होते हैं—पुरुषोंके हाथीके समान दाँत होते हैं, सुतराम् पुरुष ही सुन्दर होते हैं, और वेही रूपवान भी होते हैं। ऐसी-ऐसी बातें हताश प्राणवालोंके ही मुखसे सुन पड़ती हैं। वे लोग देखते नहीं, देखने पाते नहीं, देखना जानते नहीं—इसी कारण वे इस बातको समझनेमें सर्वथा असमर्थ रहते हैं कि, हमलोग कैसी हैं और कितनी सुन्दर हैं। हमलोगोंके मनको हरनेके लिये—हम लोगोंकी सेवा करनेके

लिये ही मर्दों का रूप—मर्दों का ऐश्वर्य्य है। हम लोग कैसी ही क्यों न हों, किन्तु हम लोगोंके पैर तले रहने ही के लिये मनुष्यों का जन्म हुआ है।

(२)

"अब यहाँ पर मैं अपनी राम-कहानी कहूँगी। मेरा नाम कालिन्दी है। किन्तु बङ्गवासिनी होने पर भी मुझमें रूप नहीं है। यह बात मुझे आइनेमें अपना प्रतिबिम्ब देखने से मालूम हुई है! इसीलिये मैं कहती हूँ कि, मैं रूपवती नहीं हूँ। मेरे सिर है, गाल हैं, नाक है, कान हैं, ओठ हैं, अधर हैं, नेत्र हैं, चिबुक है, कण्ठ है, वक्ष है, श्रोणी है, जंघा हैं, है सभी—किन्तु रूप नहीं है। सोलह वर्षमें पैर रखने पर स्त्रियोंमें जो जो होना आवश्यक है, मुझमें वह सब है, केवल रूप नहीं है; इसीलिये कदाचित् मेरा नाम कालिन्दी है। इस अवस्थामें गधियोंमें भी रूप होता है, घोड़ियाँ भी इस अवस्थामें सुन्दरी लगती हैं और मनुष्योंके विषयमें तो सभी लोगोंका कहना है कि इस अवस्थामें चाहे मर्द हो या स्त्री, अवश्य ही सुन्दर ज्ञात होते हैं। किन्तु शोक है कि, इस अवस्थामें भी पैर रखने पर मुझमें रूप नहीं है।

"यह स्त्री सुन्दरी नहीं है।" यह कह कर जो पुरुष पाठक मेरी इस रूप-कथाको नहीं पढ़ेंगे, उनके लिये मैं दुःखित होनेवाली नहीं हूँ। इस दुर्भिक्ष के समय, दुर्गा-

पूजा की धूमके समय, मलेरियाके भयङ्कर प्रकोपके समय, तुम लोगोंको पागल बनाने की मेरी साध नहीं है, मुझे इसके लिये कष्ट भी नहीं है।

"मेरा रंग काला है; किन्तु जूतेके बुरुशके समान काला नहीं, रानीगञ्जकी कोयलेकी खानमें काम करनेवाले कुलियोंके समान नहीं, शौकीनोंके अङ्गरेजी बालोंके समान नहीं, हिन्दी साहित्यके कई एक नामवर लेखकों की देहके समान भी नहीं, मेरा रंग मेरे ही समान काला है। जिस समय तुम लोगोंकी स्त्रियाँ दुर्गापूजाके समय गहनोंकी फ़रमायश करके क्रोध-भरी आँखोंसे तुम लोगोंकी ओर देखती हैं, उस समय गहने बनवानेमें असमर्थ तुम्हारा निवासस्थान या हृदय जैसा अन्धकारमय—काला दीख पड़ता है, मेरा रंग भी वैसा ही काला है।

"कहना नहीं होगा कि, मेरी शादी हो गई है। मेरे स्वामी मुझको प्यार करते हैं कि नहीं, इसकी खोज-ढूँढ करनेका मुझको अवसर ही नहीं मिला, तथापि वे मेरे लिये पके नीबूके रंगको जाफ़रानी बम्बइया साड़ी दुर्गापूजाके समय ख़रीद कर देते थे। यदि आप लोग मेरे आदर-सुहागके विषयमें जानना चाहते हैं, तो उसकी क्या गणना? क्योंकि अपना काम पड़ने पर तो निगोड़े मर्द सभी कुछ कर सकते हैं, इसी लिये कहती हूँ कि आदर-सुहागकी क्या गणना? मेरा नाम कालिन्दी, मेरा निवासस्थान कालीघाट,

मेरे पिताका नाम काली घोष, मेरे स्वामीका नाम कालाचाँद —तो भला मैं काली क्यों न होऊँ? विशेषत: जबसे हिन्दुस्तानमें अँगरेजोंकी अमलदारी हुई है, तबसे मेरा देश काले कुलियोंका मुल्क हो गया है। इस सम्बन्धसे भी काले कुलीकी स्त्री कालिन्दीको भी काला ही होना चाहिये। पढ़ने वाली बहिनो, पुरुष पाठक भाईयो! नाराज़ मत होना, तुम लोग पुरुषोंकी मीठी बातोंमें अपनेको भूल आनन्दवश आपेसे बाहर हो जाती हो, फिर ऐसी दशामें कब सम्भव है कि तुम लोगोंको मेरी ऐसी-ऐसी जली-कटी बातें अच्छी लगें? किन्तु लाचार हूँ, समय पड़ने पर जैसी-तैसी कथा कहनी और सुननी ही पड़ती है। मैं कुरूपा हूँ।

(२)

मेरे स्वामी वकील हैं। पूजाकी छुट्टीमें वे भी घर आये हैं। उनके आते ही थियेटर देखनेका मुझे अवसर मिला। विशेषत: सरहज, सरहजकी लड़की प्रभृति लोगोंका उन पर कुछ अधिकार है। उसी अधिकारके बलसे, इन पर उन लोगोंकी डॉक-दाबके डरसे, इच्छा न रहने पर भी, थियेटर देखनेके लिये आप बद्धपरिकर हुए। हम लोग, आज "कृपणका धन" अभिनय होगा, उसे ही देखने जायँगी। दो घोड़ा-गाड़ी भी हम लोगोंके जानेके लिये भाड़े की गई हैं। एक गाड़ी पर तो लड़के लड़कियाँ और घरकी बूढ़ी स्त्रियाँ जायँगी; दूसरी पर मैं, छोटी बहन, मँझली भाभी और

मेरे स्वामी यही चार आदमी जायँगे। गाड़ी आयी, सब लोग उक्त व्यवस्था के अनुसार गाड़ी पर चढ़ गये और गाड़ी चल पड़ी। काली घाटसे अभिनय-स्थान बहुत दूर है। घोड़ा-गाड़ी पर भी जानेसे एक घण्टा पूरा लगता है, इसी एक घण्टेके बीचमें मैं भली भाँति समझ गई कि, मैं अवश्यमेव बहुतही कुरूपा हूँ। क्योंकि उस समय मैं घूँघट मारे हुए थी और मँझली भाभी घूँघट काढ़े भीतर-ही-भीतर मन्द मुसकानकी छटा दिखाती ननदोईके सामने बैठी थीं। पुरुष पाठक! तुम लोगों की यह आदत है कि, जिसको देखते रहते हो, जिसे देखनेका अधिकार तुमको मिला है, उससे तुम अपनी आँखें लड़ाना पाप समझोगे, उसके साथ दो चार बातें करते लज्जित होगे, परन्तु जहाँ अवगुण्ठनवती कामिनी सामने पड़ी—चाहे दुष्प्राप्य भले ही हो, लेकिन अपनी आँखोंको फाड़-फाड़ कर उसकी ओर देखना शुरु करोगे। वह भले ही कुरूपा हो, किन्तु तुम्हारी आँखोंमें उसका मोल स्वर्गकी परियोंकी अपेक्षा भी अधिक ठहरेगा। यही कारण है कि भाभीकी लावण्यधारा प्रत्येक क्षण नव-शिशिर-सिक्त शेफालिकाके समान चारों ओर फूट चली। मेरे स्वामी भी समझ गये कि वे सुन्दरी हैं, मैं भी समझ गयी कि वे रूपवती-लावण्यमयी हैं। उस समय न जाने क्यों अकस्मात् मैं भयसे विह्वल हो उठी। उस दिन, उसी समयसे, मैं अन्यमनस्कसी हो कर अभिनय देखकर लौटी।

"दूसरे दिन प्रातःकाल स्वामीने ट्रङ्क खोल मुझे एक बनारसी साड़ी दी। उसके कपड़ेका रंग बसन्ती था। एक अच्छी ज़रदोज़ीके कामकी मख़मलकी अँगिया भी दी। मख़मल बैंगनी रंगकी थी।

(४)

"दूसरी 'दुर्गा-पूजा' आ गई। आज स्वामी भी आ गये। क्योंकि ज़िला अदालतकी छुट्टी एक महीने की हुई है। किन्तु हाय। यह देखो, इतने दिनों पर परदेशसे लौटे हुए हृदय-वल्लभ, जीवन-सर्वस्व, बिना मुझसे मिलेही—बिना मेरी वियोगाग्निको शान्त किये ही—दार्जिलिङ्ग जानेके लिये वेगमें कपड़े रख रहे हैं। तब भला मैं यह क्यों नहीं कह सकती हूँ कि, स्वामी यदि मुझे सुन्दरी समझते—मेरी सौन्दर्य-प्रभाके प्रेमी होते, तो अवश्य वे मेरे चरणोंकी दासत्व वृत्ति स्वीकार कर सदैव मेरी आज्ञामें रहते? किन्तु मैं तो कुरूपा हूँ। दारजिलिङ्गमें चिर-तुहिन-विमण्डित काञ्चन जंघा है, वहाँ बर्फके समान शुभ्रवर्णवाली रमणियाँ विहार करती हैं। तो भला यह कैसे हो सकता है कि, ऐसे देशमें निगोड़े मर्द दौड़ न लगावें?

"किन्तु, मुझमें सुन्दरता है। वह मेरी सुन्दरता है कि मेरे घूँघटकी सुन्दरता है, सो मैं नहीं कह सकती। किन्तु जिस समय मैं घूंघट काढ़े, कहीं जानेके लिये घरसे बाहर निकलती, तो गाँवके लोग न जाने किस भावसे आँखें फाड़-

फाड़ कर मुझे देखते थे। जिस समय लोग मुझे देख रूप की खोज करने लगते थे, उस समय ज्ञात होता था कि मैं बड़ी सुन्दरी हूँ—सुन्दरता की खान हूँ। किन्तु वही रूप मेरे स्वामी की दृष्टिमें विरूप था। इसीसे कभी-कभी भय होता था कि, मुझमें रूप नहीं है।

"रूप-कथा की मैंने इतनी झड़ी क्यों लगा दी, क्या आप जानते हैं? पुरुषोंके लिखे हुए नाटक, उपन्यास प्रभृति सब पुस्तकोंमें स्त्रियोंके रूप-वर्णन की अधिकता देखी जाती है। तब मेरी कामिनी-कुल-कलङ्कित कालिन्दी की कथामें रूपका उल्लेख क्यों नहीं किया जायगा? पुरुष अपने रूपका वर्णन आप नहीं करते, किन्तु मैंने अपने रूपका वर्णन आप किया है।

(५)

"पतिदेव दार्जिलिङ्ग चले गये। आज दुर्गा-पूजा की पञ्चमी तिथि है। जगज्जननी की प्रतिमा प्रस्तुत हो रही है, पूजागृह परिष्कृत एवं परिमार्जित हो रहा है। घरके प्रायः सभी लोग काम-काजमें व्यस्त हैं। काम केवल मुझे ही नहीं है। मेरे अभी तक कोई सन्तान-सन्तति नहीं हुई है। मेरे बड़े भाईके दूसरी स्त्री है, उनके कोई लड़का बाला नहीं है। मँझली भाभी भी मेरे ही समान हैं। मँझले भाई अभी तक विदेशसे नहीं आये हैं; सुतरां हम इतने आदमियोंमें किसीको कुछ काम नहीं है। पूजाके काममें

माँ, चाकरानी आदि बूढ़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ लगी हुई हैं। हम सब एक उमर वाली सभी मिल कर हँसीके फ़व्वारे छोड़ रही हैं। बीच-बीच में मौक़ेपर मुझे यह भी कह देना पड़ता है कि मैं कुरूपा हूं। यदि मँझले भैया भी घर आकर दार्जिलिङ्ग चले जाते, तो मैं समझ जाती कि, मँझली भाभी भी मेरे ही समान कुरूपा हैं।

"पञ्चमीको सन्ध्याके समय मँझली भाभीके नाम एक चिट्ठी आई। लिफ़ाफ़े के ऊपर का हस्ताक्षर देख मैं काँप उठी। कारण, उसके अक्षर मेरे स्वामीके हाथके थे। पत्र पढ़कर भाभीने मुझे दिखलाया। उसमें भी मैं "कुरूपा कालिन्दी" ही लिखी गयी थी। पत्रमें एक स्थान पर लिखा था,—'प्राणेश्वरी! आनेके समय तुम्हारे चन्द्रवदन का दर्शन यह चकोर न कर सका—यह दास तुम्हें कुछ प्रेमोपहार भी स्मरण रखनेके लिये न दे सका; इसका इसे बड़ा पश्चात्ताप है। इस अपराधको तुम अपने हृदयासनमें स्थान मत देना। दार्जिलिङ्ग से कौनसा पदार्थ लाकर यह दास तुम्हारा मनो-विनोद कर सकता है? पत्र-द्वारा इसकी सूचना पानेसे मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा!' इत्यादि इत्यादि! पाठकप्रवर! विचारिये तो सही, क्या इतने पर भी मैं अपने को सुन्दरी समझ सकती हूँ?

"दूसरे दिन षष्ठीके प्रातःकाल नगेन्द्र मेरे घर आया। नगेन्द्र मेरे ससुरका प्रतिपालित एक दरिद्र मनुष्य है। बहुत

दूरके नातेमें वह मेरे ससुरका भाञ्जा लगता है। नगेन्द्रने आकर बिना हाथ मुंह धोये ही भीतर दासीसे कहला भेजा कि, उनसे (मुझसे) जाकर कहो कि, "आपको लेजानेके लिये आपकी ससुरालसे एक आदमी आया है। उसीके साथ आपको आजही वहाँ जाना होगा। वह भाड़े की गाड़ी पर आपको लिवा जायगा।" इस बातको मगरी दासीने मुझसे आकर कहा। इसके विरुद्ध मुझे कुछ भी बोलने की हिम्मत न पड़ी। कारण कि, हिन्दुओंकी स्त्रियोंका श्वसुर-गृह ही सर्वस्व है। सुतराम् मुझे उसी दिन वहाँ जाना पड़ा।

"पुन: वही घोड़ा-गाड़ी है। एक दिन सन्ध्याकी समय इसी घोड़े-गाड़ीपर चढ़कर मैंने मंझली भाभी को अत्यन्त सुन्दरी देखी थी, और आज दोपहरकी समय उसी घोड़े-गाड़ीपर चढ़कर नगेन्द्र को अत्यन्त सुन्दर देख रही हूँ।

"ऐसा क्यों होता है? अत्यन्त परिचय से रूपका अभाव बोध होता है और अपरिचित के समीप में रूप का प्रभाव। इस प्रकार क्यों बोध होता है? रास्ते में जाते-जाते नगेन्द्रने एक बार मुझसे कहा—"भाभी! तुम्हारा नाम कालिन्दी क्यों पड़ा? और भैय्या तुम्हें छोड़कर दार्जिलिङ्ग क्यों चले गये? तुममें रूप भी तो खूब ही है। क्या तुम अपने इस अपूर्व रूपके बाज़ारमें उनको खरीद न सकीं?" इस बातको सुनतेही मेरे हृदयका वह भाव, एक दूसरे भावमें परिणत हो गया।

"ससुरालमें जिस दिन गई, उस दिनसे तीन दिन तक (दुर्गा पूजा तक) मुझे सदा अवगुण्ठनवती ही होकर रहना पड़ा। बस, ससुरके घरके सभी लोग मेरे रूप की व्याख्या करने लगे। मेरी सास गाँव की पड़ोसिनोंसे कहा करती थीं—"मेरी पतोहू के शरीरका कैसा सुन्दर चम्पा-पुष्प के समान रंग है। इसके शरीर की गठन भी कैसी मनोमुग्धकारिणी है, धीर चलन; बड़ी-बड़ी आकर्णविस्तृत, कजरारी, मृगोपम आँखें; पतले-पतले ओठ। अहा! मेरी पतोहू मानो साक्षात् लक्ष्मी है।" मैंने सास के मुखसे ऐसी ऐसी बातें सुनकर अब आइना देखना छोड़ दिया! और नगेन्द्र?—वह तो केवल मेरे चन्द्रवदनका चकोर बना सदा घूमा करता था।

"घड़ियाँ सब एक ही रहती हैं, किन्तु सब घड़ी एक चाल से नहीं चलतीं। कुछ अन्तर देकर चलती हैं। सब लोगोंके दो नेत्र होते हैं, किन्तु सब लोगोंके नेत्र एक चीज़को, एक समय, एकही तरह नहीं देखते। मेरे स्वामी जिस दृष्टिसे मुझे देखते थे, नगेन्द्र उस दृष्टिसे मुझे नहीं देखता था। मेरी माँ मुझे जिस तरह देखती हैं, मेरी सास मुझे उस तरह नहीं देखतीं। यही तो वैषम्य है—इसी वैषम्यसे सर्वनाश होता है, और होने की सम्भावना है। किन्तु वैषम्य ही मानव-समाजकी व्यवस्था है। वैषम्य-वैचित्रही के द्वारा मानव-समाजकी पुष्टि है।

"मेरे रक्तमांस-निर्मित शरीरके देवता, मेरी भिक्षा की

झोली, दरिद्रता की फटी गुदड़ी, प्यासे पथिकको जल-पात्र, अन्धोंकी अवलम्ब लकुटिया, इस जन्मके अधिष्ठाता, मेरे स्वामी इस समय दार्जिलिङ्ग गये हैं। मेरे खेल-घरकी पुतली, वाक्स की अतरवाली शीशी, नेत्रके अञ्जन, माथेके सिन्दूर, अञ्चलकी चाबी, हृदयके निधि, मेरे स्वामी इस समय दार्जिलिङ्ग में हैं। और मैं अपने पिताकी प्यारी लड़की, सासकी सुहागिन बधू, पड़ोसियोंका गौरव-धन, नगेन्द्रका ईप्सित पारिजात-कुसुम—सुहागसे गिर, कीचड़ में फँस गई।

(६)

"जो अपना नहीं, क्या वही मीठा लगता है? जिसको पहले पाया नहीं, क्या वही अपूर्व होता है? मंझली भाभी मेरे स्वामीकी दृष्टि में अपूर्व, और मै नगेन्द्रकी दृष्टिमें अपूर्व जँचती हूँ। हा हन्त! यही कारण है कि मैंने अपने सर्वस्व पातिव्रत-धर्मको धूलकी तरह मुट्ठीसे उड़ा दिया।

"जो होनेवाला होता है, वह लाख यत्न करनेपर भी नहीं रुकता—हो ही जाता है। जो भाग्यमें लिखा है, वह अवश्य होगा।

"तुम लोग पुरुष हो, तुम लोगोंके लिये संसार है। तमाशा दिखलाने वाला नट कभी फूलको अपने माथे पर रखता है, कभी उसे धूल में फेंक देता है—इसी प्रकार पहले अपने सिर पर चढ़ाकर अब मुझे भी संसारने फेंक दिया। तुम्हीं

लोग निरादर-पूर्व्वक अलग भी करते हो, अलग करके देखते भी रहते हो, अन्तमें निन्दा भी करते हो। यही कारण है कि, उसके प्रतिशोध स्वरूप हमलोगों को प्रेतनी का आकार धारण कर समाज के कन्धेपर मानव-मस्तक को लेकर चलना पड़ता है। किन्तु इसमें दोष किसका है? मेरा दोष तो है नहीं। मैं पहले भी संसारमें थी, अब भी हूँ—मुझे संसार ने जैसा बनाया, मैं वैसी ही बनी। जिस संसारमें मेरे स्वामी रहते थे, उसी संसारमें नगेन्द्र भी रहता था, जिस संसारमें मेरी मा थीं, उसी संसारमें मेरी सास भी थी, और मैं भी उसी संसारमें हूँ; तब मेरी ऐसी दशा क्यों हुई; इस पाप-कर्म्ममें मेरी लिप्सा क्यों बढ़ी?

"तुम लोग ताली दे दे कर मुझे नचाओ मत। जिस समय मैं नाचना आरम्भ करूँगी, उस समय तुम्हारे समाज-हृदय को मथित कर छोड़ूँगी।

"मुझे अब भरोसा श्री जगज्जननी सरस्वतीका ही है—सन्तान कैसी ही क्यों न हो, परन्तु उसे माता ही अपनाती है—अतएव हम पतितों की रक्षा करनेवाली भी श्री जगज्जननी दुर्गा ही हैं। जिन्होंने पिशाचनियोंको भी नाम-सुधाके पान करनेका अधिकार दिया है, वे ही हम लोगोंकी त्राण का मार्ग परिष्कार करेंगी। तुम लोग भी पतित हो—सत्शिक्षा के दोष से, समय के फेर से, तुम लोग भी पुरुष

वेश्या हो। वाराङ्गनाओंके कटाक्षसे अपने आपको भूल-जानेवाले हो। पतित पुरुषोंके काम-कटाक्ष-कज्जलसे हम-लोग भी चिरकलङ्किनी हैं।

"हम दोनोंका भरोसा कलिकी कलुषनाशिनी भगवती भागीरथी ही हैं।"

सोना।

सोना एक ग़रीब ब्राह्मण की लड़की है, सोनाकी माँ और नानी हैं, किन्तु बाप, बहन, भाई, मामा, मौसी इत्यादि आत्मीय-स्वजन कोई नहीं है। यशोहर जिलेके कनफूल ग्राममें सोना रहती है। इच्छामती नदीके तीर पर वंशवारि है, उसी वंशवारि के बाहर सोना का मकान है। इसमें केवल छप्पर के तीन घर तीन तरफ़ हैं। एक ओर केवल मैदान है। बीचके घरमें सोना और उसकी माँ सोती है। घरके सामानों में एक बेंतका पिटारा और उस पर एक छोटा-सा काठका बक्स रक्खा हुआ है। पिटारेमें ताला चाबी नहीं है। दोनों तरफ़ कछुए की पीठकी तरह ऊँची दो चौकियाँ हैं। इनके ऊपर तीन घड़े, एक बड़ा पीतल का हण्डा, जिसमें दो लोहेके कड़े लगे हुए हैं, रखे हुए हैं और एक पत्थर की छोटी-सी चौकीके ऊपर एक पीतल की थाली रखी हुई है। एक पीतलकी थाली तथा एक कूंडी जिसके ऊपर एक और पीतल की थाली पास ही रखी

हुई है। सभी मँजे-मँजाये झक् झक् झलक रहे हैं। घरके एक कोनेमें एक बींडेके ऊपर एक मिट्टीका छोटा घड़ा जलसे भरा हुआ रखा है। जिसका मुंह एक मैले कपड़े की छनने से ढँका हुआ है, घर की एक ओर बाँस का एक मचान बँधा हुआ है, उसपर साफ़ बिचाली बिछी है, बिचालीके ऊपर एक पुराना तोशक बिछा हुआ है। तोशक इतना पुराना है, कि जिसका रंग देखकर यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि वह खारुवेका है या और किसी दूसरे कपड़ेका। उसके ऊपर एक चादर बिछी है, जिस पर कि सिरहाने की ओर छोटे-छोटे तकिये रखे हुए हैं। बिछौनेके पायताने एक बाँसकी अलगनी टँगी हुई है। उसके ऊपर एक ओर एक लिहाफ़ और कम्बल डाल दिया गया है, और दूसरी ओर दो धोतियाँ चुनकर रखी हुई हैं। घरके बीचमें तिपाई पर तीन छोटी-छोटी हाँड़ियाँ रखी हुई हैं, जिनपर एक ढकना रखा हुआ है। हाँड़ियोंके भीतर क्या है, इसको ठीक-ठीक नहीं कह सकते, परन्तु अनुमानसे कहना पड़ता है कि शायद कुछ खानेका सामान हो। घरके एक कोनेमें मचानके नीचे एक दाव, एक कुदार और एक खन्ती एक छोटे पत्थरके टुकड़े पर रखे हुए हैं। इतने बड़े घरमें कूड़ेका नाम नहीं है। घरका निचला भाग ऐसा लिपा-पुता और साफ़-सुथरा है कि, ज़रासे सिन्दूरके भी गिरनेसे वह उठा लिया जा सकता है। बाहर ओटे पर एक तरफ़ एक

बड़े दौरेमें कुछ ओटा हुआ कपास और बिनौले रखे हुए हैं, और कुछ नहीं। दक्खिनवाले घरमें रसोई होती है। घरके दरवाज़े पर एक छोटा-सा ओटा बंधा हुआ है। घरके भीतर दो चूल्हे हैं, चूल्हेको बग़लमें ऊपर छींके पर रसोई मिट्टीके बर्तन रखे हुए हैं। चूल्हेको बग़लमें खूंटीके ऊपर एक लोहे की कड़ाही लटकी हुई है। पश्चिम ओर की मँड़ईमें दो गाय और दो बछड़े बंधे हुए हैं। घरके बाहर बीचमें एक पुराना कटहरका पेड़ है और टट्टीके दोनों बग़ल कुछ गेंदे, कुछ गुलाब और मेंहदीके पौधे लगे हुए हैं। यही तो सोनाका घर है। सोना की नानी बहुत ही बूढ़ी है, कमर झुक जानेसे कुबड़ी हो गई है। अगर वह सिर झुका-कर बैठे तो उसके घोंटू और माथा एक हो जायँ। वह एक मोटा गाढ़ा कपड़ा पहने हुए है।

(२)

फागुन का महीना बीत चला है, दोपहर का समय है। स्वच्छ आकाशके स्वच्छ दोपहर की धूप पेड़ों को नयी-नयी पत्तियों पर पड़ कर मानो गले हुए सोनेको ढाल रही है। कटहरके पेड़ पर बैठा हुआ एक कव्वा काँव-काँव कर रहा है, और बीच-बीचमें कभी-कभी एक भौंरा सुनहली धूप को भेद कर भिनभिनाता हुआ आकर कटहल की नयी-पत्तियों पर बैठता है, और तुरत उड़ कर चला जाता है।

सोना की माँ और सोना नदीमें नहाने गई हैं। नदीके घाट पर सोना की माँ नहाकर पूजा पाठ कर रही है। सोना भी नहा कर, भींगा कपड़ा पहने, पीतल की कलशी काँखमें आये, माँके इन्तज़ारमें साथ चलनेके लिये खड़ी है। भींगा गमछा छाती और उस कलशीके मुख पर पड़ा हुआ है। सोनाकी उमर चौदह वर्षकी है, अबतक विवाह नहीं हुआ है। सोना यद्यपि बहुत गोरी नहीं है, परन्तु काली भी नहीं है। अगहन-पौषके गंगाजल की तरह उसका रङ्ग शीतल, स्निग्ध और साँवला है। सोना डील-डौलमें बड़ी सुन्दरी है—उसके शरीर की गठन बड़ीही सुन्दर हैं, उसकी सुन्दर आँखें सदैव ज़मीनकी ही ओर देखती रहती हैं। यद्यपि तिल-कुसुमके सदृश उसकी नासिका नहीं है, तथापि उसका डौल बड़ा ही हृदयहारी है। दोनों ओठों की गठन उतनी अच्छी न होने पर भी, खूब पतली और सरस है। सोना की चोटी पीठके पीछे लटक रही है। चोटी इतनी सघन है कि मुट्ठीमें नहीं पकड़ी जा सकती—लम्बी इतनी है, कि कमरसे नीचे तक काली नागिन की तरह सदैव लोटती रहती है। उसके बालोंसे उसकी पीठ, महाकाली की पीठ की तरह ढँकी हुई है। सोना मिट्टी की मूर्त्तिके सदृश चुपचाप खड़ी है। सोनाकी माँकी अवस्था पचास वर्षके लगभग होगी। जवानीकी अन्तिम दशामें भी देखनेपर सोनाकी माँ किसी समय एक असाधारण सुन्दरी थी, इसका अनुमान किया जाता है। उसका गुलाबी

रङ्ग इस समय भी देहमें झलक रहा है। मुँह दशहरेकी देवीके सदृश गम्भीर और हास्यपूर्ण है।

सोना माँके लिये खड़ी है। सोनाकी माँ मन लगा कर पूजा कर रही है। इतनेमें इच्छामती नदीके सामने की मोड़से फिरकर एक पनसुई तीरकी तरह आकर उसी घाटपर लगी। उसमेंसे एक जवान ब्राह्मण उतर कर घाटपर खड़ा हुआ और वहीं सोना और उसकी माँको देखकर बोला "अहा! विन्दुबुआ यहीं हैं। अच्छा हुआ। मैं बड़ी विपदमें फँसा हूँ, श्रीनाथ पनसुईके भीतर है, उसको हैजेकी सी कोई बीमारी हो गई है। तुम्हारे गाँवके मधुसूदन दत्त कविराजको बुलाकर लाना है, तुम पूजा खतम कर पनसुईमें जाकर बैठो, मैं कविराजको बुलाने जाता हूँ। आ सोना आ, तू मेरे साथ आ।" यहकह उस ब्राह्मणने सोनाको हाथके इशारेसे बुलाया, क्योंकि सोना गूंगी और बहरी है।

(२)

उमाचरण बाबू इस देशके एक प्रतिष्ठित तालुकेदार हैं। श्रीनाथ इन्हींका इकलौता बेटा है। इस प्रान्तके सभी लोग सोनाकी माँ विन्दुवासिनीको 'विन्दु बूआ' कहा करते थे। विन्दुवासिनीके स्वामी रमानाथ यशोहरमें एक महाशयके यहाँ मुख्तार थे। उनको मरे आज तेरह वर्ष हो गये। वे जो कुछ कमाते थे, सब खर्च कर डालते थे। उन्होंने एक छोटासा गाँव खरीदा था। वह उमाचरण बाबूको ठेकेपर दे दिया था।

उसकी आमदनी कितनी थी, यह तो नहीं जानते ; किन्तु उमा-चरण बाबू 'बिन्दबूआ'को पाँच रुपया महीना दिया करते थे। इसके अलावा सालभरका धान और देवी-पूजाके समय सोना, उसकी माँ और नानीके लिये एक-एक जोड़ी धोती खरीद दिया करते थे। सोनाकी शादीके लिये विन्दुवासिनीने उमाचरण बाबूसे कईबार रोरो कर प्रार्थना की, पर बहरी और गूंगी लड़कीसे कोई विवाह नहीं करता, इसी बहाने अब तक उमाचरण बाबू इस काममें टालमटोल किया करते थे। इसी बीचमें श्रीनाथ सख्त बीमार पड़ा, लाचार होकर उमाचरण बाबूको विन्दुवासिनीका आश्रय लेना पड़ा।

मधुसूदन कविराजने आकर श्रीनाथको विन्दुवासिनीके बड़े घरमें ला रक्खा। श्रीनाथको हैज़ेसे तो रिहाई मिल गई है, परन्तु ज्वर आने लगा है। सोना आठों प्रहर श्रीनाथके पास रहती है। एक तरहसे खाना-पीना, छोड़कर ही सोना उसकी सेवा करती है। उधर श्रीनाथके घरसे उसकी माँके सख्त बीमार पड़नेका समाचार आया। उमाचरण बहुत घबराये, अन्तमें उन्होंने सोचसाच कर स्थिर किया कि, "इस समय मालकिनी मर भी जाय तो क्या हर्ज है, हम दोनोंकी जीवननाव तो अब घाटपर आ लगी है, आगे-पीछेकी कोई बात नहीं। हम लोगोंके संसारसे उठ जानेसेही सब बखेड़ा तय है। श्रीनाथ हम लोगोंके वंशका अवलम्बन है। श्रीनाथके बचे रहनेसे, हम लोगोंके पिण्ड पानीकी व्यवस्था

ठीक रहेगी। जगदम्बाके मनमें जो है वही होगा, पर मैं तो श्रीनाथको छोड़कर नहीं जाऊँगा। उसके (गृहिणीके) भाग्यमें जो है वही होगा। उमाचरण बाबू उसी ग्राममें—कनफूलमें ही रह गये।

बीस दिन तक दवा सेवन करनेके बाद श्रीनाथ उठकर बिछौनेपर बैठा। अब उमा बाबू अपनी स्त्रीको खबर लेने अपने घरपर चले गये। सोना छायाकी तरह श्रीनाथके पास रहती है। उसके मुखकी भावभङ्गी देख कर ही, उसके मनकी सारी बात समझ कर तुरत चुपचाप श्रीनाथकी सभी ज़रूरतोंको पूरा कर देती है। श्रीनाथकी उमर अठारह वर्षकी है, उत्तम वंशका ब्राह्मण है, इसी लिये अभीतक श्रीनाथका विवाह नहीं हुआ। उमा बाबू श्रीनाथके योग्य दुलहिन भी खोज नहीं पाते। इधर विन्दुवासिनी कुलीन ब्राह्मणकी पत्नी है। उसके स्वामी रूद्रराम चक्रवर्तीके पुत्र थे। उनकी कुलीनता उनके बापके समयसे कुछ खिसकी हुई है। सोना का विवाह होना अब और कठिन है।

(४)

आज श्रीनाथने पथ्य खाया है। एक तकियेके सहारे दीवारसे लगकर वह बैठा है। सोना पासही बैठी हुई श्रीनाथके रूखे हुए माथेपर हाथ फेर रही है। श्रीनाथ सुयोग्य और एक नौजवान लड़का है, किन्तु इस समय बीमारीके कारण अत्यन्त दुबला-पतला हो गया है।

श्रीनाथने कहा—"सोना, अगर तू बोल सकती तो तेरे साथ मैं कितनी ही बातचीत करता। तेरी बूढ़ी नानी तो बहरी है, तुम्हारी माँ मेरे लिये दवा और पथ्य तैयार करनेमें ही सारा दिन रसोईघरमें बैठे-बैठे बिताती है और तू जैसी है मैं देखता ही हूं। जगदम्बाने ऐसे योग्य मनुष्यको ऐसा क्यों बनाया?"

यह कहकर श्रीनाथने सोनाका हाथ पकड़ा। सोना श्रीनाथकी ओर एकटक देख रही थी। प्रेम हो जाने पर मनमें अनेक तरहकी बातें उठती हैं। श्रीनाथ सोनाको प्यार करता था, इसीलिये सोनाका हाथ पकड़ कर उसने मन-ही-मन सोनासे अपने मनकी कितनी ही बातें कहीं। सोना न तो उन्हें सुन सकती थी और न कुछ बोलही सकती थी। कुछ देर तक सोना, एकटक श्रीनाथके मुखकी ओर देखती रही, अन्तमें उसकी बड़ी-बड़ी दोनों आँखोंसे फूलकी पत्तियोंसे ओसकी बूँदोंकी तरह टप् टप् आँसू गिरने लगे। सोना तो बोल नहीं सकती थी, उसके हृदयका रक्त प्रेमकी आँचसे भाफ़ बन कर उसकी आँखोंसे वर्षाकी बूँदोंकी तरह गिरकर उसके सूखे वक्षःस्थलको भिगोने लगा।

श्रीनाथ—"छिः! क्यों रो रही है सोना? रोनेके सिवा तू करही क्या सकती है? पर तेरे रोनेसे हम सँभल नहीं सकते, तेरी आँखोंमें आँसू देखने पर हमारे इस अस्थि-पिञ्जरका पोषा प्राण-पखेरू उड़ जाना चाहता है। हम जीते

रहेंगे तो सब कुछ हो रहेगा। सोना, हम निरोग और सबल होकर उठें, तब जो उचित होगा वह करेंगे।"

सोना श्रीनाथकी बातें यद्यपि सुन न सकी, परन्तु उनके मुखकी भाव-भङ्गी देखकर, उनके आन्तरिक भावको भली भाँति समझ गई। उसने यह समझा कि मेरी आँखोंमें आँसू देखकर श्रीनाथके हृदयमें बड़ी चोट लगी है। मैं तो सदाकी दुःखिनी हूँ, इन अभागी आँखोंसे दो बूँद आँसू गिरा कर अपने प्रेमपात्रको दुःखी क्यों करूँ? सोना एक लम्बी साँस लेकर सम्हल गई।

इसी प्रकार दिन-पर-दिन कटने लगे। श्रीनाथ अच्छे हो गये। उनकी माँ भी अच्छी हो गई। उमाचरण बाबू आकर श्रीनाथको अपने घर लिवा गये। बिचारी सोनाके लिये फिर वही घाट, वही मैदान, वही नदी, वही वन और उसी प्रकार उसका जीवन पहलेकी तरह बीतने लगा, पर सोनाका मन अब वैसा न रहा। जो चीज़ जहाँ देखती, बस उसीको देखती रह जाती, जहाँ खड़ी होती, बस वहीं गड़ जाती। और दिन दोपहरके समय नदीके तीरपर जाकर फतिङ्गोंका उड़ना और रङ्गबिरङ्गी मछलियोंका खेल देखा करती थी। नील आकाशकी ओर अपनी दोनों कजरारी आँखें लगाकर, न जाने किसे देखनेके लिये चुपचाप बैठी रहती थी। इच्छामती नदीका वह नील जल-प्रवाह वैसेही कल् कल् छल् छल् करता बहा चला जाता था। उसकी धारामें

घूमती-नाचती, पाल उड़ाती हवाके ज़ोरपर एककी बाद दूसरी, दूसरीके बाद तीसरी नावें मदोनमत्ता नायिकाओंकी तरह चली जाती थीं, पर वैसी :प्रसन्नई तो फिर उस भावसे आती नहीं। डाभके भीतर पानी रहता है पर उसे कोई देखने नहीं पाता, परन्तु जब उसपर दावका घाव लगता है, तब उसका भी पानी बाहर निकल पड़ता है। सोनाके विशुद्ध हृदयमें प्रेम-पीयूष भरा था। श्रीनाथने यौवनके विकसित-रूपी दावसे-मारकर उस प्रेम-पीयूषको बाहर निकाल लिया।

(५)

कार्त्तिक बीतनेपर है, सन्ध्याका समय है, सोना प्रति-दिनके नियमानुसार सन्ध्याप्रदीप नदीके किनारे रखकर धीरे-धीरे अपने गृहकी ओर लौट रही है। इसी समय वंश-झाड़ीसे निकलकर न जाने कौन एक मनुष्य चुपचाप आकर सोनाके सामने आ खड़ा हुआ; सोना डरसे सहम गई। इतनेमें यकायक उस मनुष्यने सोनाके कन्धेपर अपना हाथ रखा। तुरत सोना समझ गई कि यह हाथ श्रीनाथका है। सोनाकी वह थरथरी दूर हुई, पर कुछ-कुछ उत्कण्ठित भावसे श्रीनाथका हाथ पकड़कर नदीकी ओर ले चली। कार्त्तिक का चाँद आकाशमें उदय हो गया है, चाँदनी छिटक रही है, सोनाने आँख भरकर उस चाँदनीके द्वारा श्रीनाथका मुँह देखा। श्रीनाथने सोनासे कहा—"तुम्हारी माँ तो हमारे साथ तुम्हारी शादी करनेपर राज़ी नहीं हैं, हमारे माँ-बाप

भी इसे नापसन्द करते हैं। हम उतने कुलीन नहीं हैं, इस लिये तुम्हारी माँ हमारे साथ तुम्हारा विवाह करना नापसन्द करती है। और तुम्हें गूँगी और बहरी जानकर हमारे माँ-बाप व्याह करनेसे इनकार करते हैं। पर हम तुम्हारे साथ अपना विवाह न होनेसे पागल हो जायँगे। पनसुई साथ लाया हूँ, उसमें रुपये पैसे कपड़े वग़ैरः सभी ज़रूरी चीज़ें मौजूद हैं। साथमें एक विश्वासपात्र सर्दार भी है। चलो, भाग चलें। बनगाँव जाकर हम तुमसे अपना विवाह कर लेंगे।"

सोनाने कुछ भी नहीं समझा या भावभङ्गी देखकर क्या उसने समझा, सो हम नहीं कह सकते; पर श्रीनाथके इशारेके मुताबिक़, उसका हाथ पकड़कर वह धीरे-धीरे जाकर उस पनसुईमें बैठ गई। माँ, नानी, घर-द्वार सब योंही पड़ा रहा। हाय रूप! ऐसी गूँगी और बहरी लड़कीको भी तूने पागल कर दिया! हाय रूप! ऐसे दुर्लभ और माता-पिताके भक्त पुत्रको भी तू उच्छृङ्खल कर देता है!

पनसुई खुल गई। सोना मँझधारमें बह चली। उसी रातमें डोंगीके भीतर, उसी इठलाती नदीकी छातीपर सोनाने श्रीनाथको देह, मन, प्राण सब कुछ समर्पण कर दिया! सोनाके पास इस संसारमें जो कुछ था, सभी उसने श्रीनाथको दे डाला। पर श्रीनाथने उसे क्या दिया? क्या

देकर उसको खरीदा ? वह गूँगी लड़की बिना दाम उस रूपमय बालकके हाथ बिक गई।

सोनाकी शादी नहीं हुई। सोना विवाहको क्या समझती है ? कुछ नहीं। सोना जो चाहती थी, उसे उसने पा लिया, एक गूँगी बहरी लड़कीके हृदयमें जो अभाव था, उसको उसने पूर्ण कर लिया।

श्रीनाथ सोनाको साथ लिये अनेक स्थानोंपर घूमते फिरे। अन्तमें सोनाकी ओरसे उनको कुछ विरक्ति-सी हो गई। पाठको ! ज़रा विचार कर देखिये, एक गूँगी, बहरी लड़कीके साथ एक शिक्षित युवक पुरुषके कितने दिन कट सकते हैं ?—एक शिक्षित युवक पुरुष, एक गूँगी बहरी लड़कीके साथ भला कितने दिनोंतक रह सकता है ? विरक्ति के साथ-ही-साथ श्रीनाथके हृदयमें अपने माता-पिताकी स्मृति उदय हो आई, साथ ही पश्चात्ताप की भी घटा उसके हृदयाकाशमें चारों ओरसे भयङ्कर रूप धरकर घिर आई। किये हुए कर्मके अनुशोचनसे घबरा कर श्रीनाथने स्थिर किया,—"जहाँका पाप है, फिर उसे वहीं रख, अपने पिता-माताका पुत्र अपने पिता-माताके सामने जायगा।"

फिर फाल्गुन मास आ उपस्थित हुआ। वह एक फाल्गुन तथा एक यह फाल्गुन ! एक अंधेरी रातको श्रीनाथ छिपे-छिपे सोनाको उसके घरके पास रखकर चोरोंकी तरह भाग गया। सोना तो चिल्लाकर रोना जानती नहीं,

सोनाके उस निःशब्द क्रन्दन को जो सुननेवाला था, उसीने सुना। सोना रोते-रोते धीरे-धीरे अपने घरके दरवाज़े पर आ बैठी। सोनाको पाप-पुण्यका विचार नहीं है ; उसके हृदयमें कोई पश्चात्ताप भी नहीं है, पापका सङ्कोच बोध भी नहीं होता। उसे दुःख केवल यही है कि यीनाथ उसे छोड़कर भाग गया है।

मनुष्यका शब्द सुन कर विन्ध्वासिनी प्रदीप जला कर उसे लिये हुए बाहर आयी। सोनाको देखकर उसका हाथ पकड़ उसे घरमें लिवा गई। सोनाके आँख-मुँह भावभङ्गी देखकर विन्ध्वासिनीको कुछ समझनेमें बाकी नहीं रहा। सब समझ बूढ़ी हाथसे अपना शिर पीटती हुई बोली—"हाय मेरी किस्मत फूट गई, उसी अभागीने तेरा सर्वनाश किया है, यह मैं जान गई।" अब सोनाने माँ की भावभङ्गी देखकर समझा कि, काम बहुत बुरा हुआ है, यह बात माँको मञ्जूर नहीं हुई है। अब सोना एक दूसरे भावसे रो उठी। सोनाकी माँने कहा—"अब इस देशमें रहना ठीक नहीं, उस छोकरेने हम दोनोंका सर्वनाश कर दिया! यहाँ रहनेसे कलङ्ककी डौंडी दो ही दिनमें सर्वत्र बज उठेगी। यशोहरमें चल कर सरकार महाशय की शरणमें रहेंगी।"

(६)

चैतका महीना है, धूप बड़ी कड़ी है। इधर एक वर्ष कट गया है। सोनाके एक लड़का हुआ है, वह

इस समय छः महीनेका हो चुका है। सोना उसको हरदम गोदमें लिये रहती है और दिनभर उसी की सेवा किया करती है। श्रीनाथको कुछ भी खोज-खबर नहीं है। श्रीनाथके पिता भी उसको कोई खोज-खबर नहीं लेते। वह सुन्दर बच्चा मानो चमेलीका गुच्छा है। सोनाके विषाद भरे मुँह पर भी, बच्चेको देखते ही मुस्कुराहट आ जाती है। सोनाकी माँ भी बच्चेका खूब लालन-पालन किया करती है, पर उसे देखते ही वह रो देती है। सोनाकी नानी की तो बात ही क्या? बच्चेको गोदमें लेनेकी साध रहते भी बूढ़ी सम्हाल न सकती और कहती—"बिन्दुका नाती बड़ा नटखट है, मैं क्या ऐसी बूढ़ी हो गई हूं कि, उसे सम्हालभी नहीं सकती?"

इस तरहसे सोना, सोनाकी माँ और वह बूढ़ी यशोहरके किसी एक गाँवमें छप्परदार घरमें—फूसके घरमें रहकर किसी तरह दिन काट रही हैं। सरकार महाशय सोनाके पिताके लँगोटिया यार हैं। वे इन सबके खर्च-बर्चका प्रबन्ध कर देते हैं। बहुत बचपनमें किसी भयङ्कर रोगके होनेसे सोनाका कण्ठ बन्द हो गया था, अबतक कोई चिकित्सा न हुई थी। सरकार महाशयने कृपाकर उस चिकित्साका भी प्रबन्ध कर दिया है। उनको भरोसा है कि सोना बोलने लगी, तो हो सकता है कि श्रीनाथ उसे फिर अपने यहाँ रखले। चिकित्सकने कहा है कि, यकायक फिर एक बड़ा भारी सुख

या दुःख पानेपर सोनाका कण्ठ खुल जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं।

यशोहरके बाज़ारमें आज बड़ा शोरगुल मच रहा है। 'आग' 'आग' कहकर एक बड़ा भारी कुहराम सुनाई पड़ रहा है। सत्यानाश! एक तो इतनी तेज़ आँधी, तिसपर चैतका महीना और उसपर भी दोपहरका समय, साथ ही सब खर फसकी घर। देखते-ही-देखते आग सैकड़ों जोभ फैला कर चारों ओर फैल गई। हाहाकारके भयङ्कर शब्दसे दिग-मण्डल पूर्ण हो गया।

यह क्या? अरे! सोनाके भी घरमें आग लग गई। यह छप्परका घर है, किसी तरह भी घरसे निकल भागने का उपाय नहीं। सत्यानाश होनेका ढँग देख सोनाकी माँ सोनासे बोली—"सोना, तू बच्चेको लेकर भाग जा, मौक़ा मिले तो बच्चेको बचाना और आप भी बचना! मैं अपनी बूढ़ी माको लेकर यहीं रहती हूँ। जगदम्बाकी दया होगी तो बचूँगी, नहीं तो माँ बेटी दोनों जल मरेंगी। इस बूढ़ीको लेकर दौड़ते-दौड़ते भाग न सकूँगी, पर तू बच गई इतना जान लेनेपर हम दोनों मा बेटी सुखसे मरेंगी।" सोनासे और ज़ियादा कहना न पड़ा, कहनेपर भी वह सुनती ही क्या? घोर आगकी लपट चारों ओर फैलती देख सोना बच्चेको गोदमें छिपा, बड़े ज़ोरसे भागी। धुएँ और आगकी ज्वालासे दिशा-विदिशाका ज्ञान होना कठिन था। सोनाको आँख

सोनाने एक लम्बी साँस भर हृदयके सर्वस्व बच्चेको बाहर कर उसके हाथमें दे, चिल्लाकर कहा—"यह तुम्हारा लड़का है, इसे तुम्हीं लो। मैं अब इसे नहीं रख सकती।"

जमीन पर जले बाँस-खण्डकी तरह सोनाकी मृत देह गिर पड़ी। अन्तिम समय सोनाका कण्ठ खुला। श्रीनाथकी गोदका बच्चा श्रीनाथकी ओर देखकर, ओठ खोलोमें "माँ" कहकर रो उठा!

फूलकुमारी ।

(१)

मैं बड़ी सुन्दरी हूँ—इतनी सुन्दरता भगवान्‌ने मुझको दी है, कि सास, ससुर, स्वामी, ननद, देवरानी, जिठानी सभीको मेरे लिये चिन्ता बनी रहती है। जब मैं कुँए पर साड़ी धोने जाती हूँ तब सासू जी सङ्ग-सङ्ग जाती हैं, साँझको कभी जी चाहा और छतपर गयी तो जेठी जी मुझे ऊपर जानेसे मना करती हैं। मकान सड़कके बिलकुल किनारे है—कभी इधरसे बाजे बजते या बारात जाती हुई देखकर चाहती हूँ कि, कोठेपर चढ़कर ज़रा देख तो लूँ, पर क्या करूँ मेरी छोटी ननद अञ्चल पकड़ लेती और मुझे ऊपर नहीं जाने देती है।

और मेरे स्वामी?—वे तो रातदिन मेरा मुँहही निहारा करते हैं। जब पास आते हैं तब कभी मेरे काले-काले भौंरेसे बालोंकी सुन्दरता देखते हैं, कभी मेरी बड़ी-बड़ी आँखोंको हिरनकी-सी बतला कर उनकी बड़ाई करते हैं। कभी मेरी

नन्ही-नन्ही अँगुलियोंको हाथमें लेकर नचाते हैं। मेरा रूप उनकी आँखोंमें इतना बस गया है कि, उनका पढ़ना-लिखना चौपट हो गया है, साँझ सवेरेका घूमना फिरना बन्द हो गया है, नौकरी-चाकरीके लिये भी कोई उद्योग नहीं करते। बस मन्त्रसे फूँके हुए साँपकी तरह रात-दिन मेरी सूरतही देखा करते हैं—मेरी सुन्दरता उनका काल हो गयी है।

(२)

केवल स्वामीकीही नहीं—मेरी खूबसूरती मेरी भी बला हो गयी है। मैं इधर-उधर हिलने-डोलने नहीं पाती, कोठरीके देवताकी नाईं चुपचाप एक घरमें पड़ी रहती हूँ। रसोई-घरमें भूले-भटके भी जानेकी मुझे सख्त ताकीद है। जिससे हँडिया महालके दारोगा महाराज मुझे न देख लें। घरका कोई छोटा-मोटा काम भी मैं नहीं करने पाती—कहीं रामसेवक नौकरकी निगाह मुझपर न पड़ जाय। स्वामीकी सेवा भी मैं नहीं करने पाती, क्योंकि कहते लाज आती है, स्वामीही मेरी टहल करते हैं। यह सेवा मैं क्या बताऊँ कैसी है? नौकर-गुलाम भी जैसी सेवा नहीं कर सकते, वैसी सेवा वे मेरी करते हैं। सास ससुरकी सेवा मैं कैसे करूँ? ससुरके सामने होना तो अनुचित ही है, बाकी रहीं सास, सो स्वामी कभी मुझे आँखोंकी ओट नहीं करते, जिससे मैं सासूजीकी आज्ञा पालन करनेका समय पाऊँ। मेरी दो ननदें उनकी साध पूरी करती हैं और इसीसे वे मेरी

सेवाकी अपेक्षा भी नहीं रखतीं। कहती हैं कि मेरी पतोहू अभी नयी-नवेली है, अभी स्वामीकी सेवा ही उसके लिये बहुत है। जब भगवान् दिन दिखायँगे तो मेरी सेवा कर लेगी।" लेकिन उन्हें क्या मालूम कि यहाँ मामला औरका और है—स्वामी की सेवा मैं नहीं करती, वेही मेरी ख़िदमतमें हाज़िर रहते हैं।

(२)

बुरा हो इस निगोड़ी सुन्दरताका—मेरी तो कोई हवस इसके मारे बुझने नहीं पाती। खाने-पीनेकी स्वतन्त्रता नहीं है, इस ठौरकी दस नयी-नयी चीजें देखनेकी मुझे आज्ञा नहीं है—साँझ सवेरे दो थाल भात खाती हूँ; बेकार बैठे-बैठे वह भी हज़म नहीं होता। स्वामीके साथ रहकर कुल-स्त्री की जो सब साधें पूरी होती हैं, जो सुख स्वामीकी सेवा-टहलसे होता है वह मेरे नसीबमें नहीं है। वे केवल मुझे देखना चाहते हैं। चन्द्रमाकी चाँदनीमें, दीयेके उजालेमें, बिजलीकी रोशनीमें—साँझ, सवेरे, दोपहर हमेशा वे मुझे रङ्ग-बिरङ्ग की पोशाक पहना कर देखते रहना ही पसन्द करते हैं। भला, इतनी देखा-देखीसे जी क्यों नहीं ऊबे? वे तो केवल मेरेही रूपकी प्रभा देखा करते हैं—मैं उनको थोड़ेही भर नज़र देखने पाती हूँ। भला, इस तरह मेरी साध क्यों पूरी हो?—कर्मकी-बात है—इस रूपनेही मेरे जीवन-यौवन दोनों नष्ट कर दिये।

(४)

मेरे कमरेमें एक बड़ासा आइना टंगा है। मैं बहुत बार उसमें अपना मुँह देख चुकी हूँ—रोजही उसके सामने बैठकर माथेके बाल सँवारती हूँ, पर मेरी समझमें नहीं आता कि और स्त्रियोंसे मैं किस बातमें बढ़ी हुई हूँ कि, मेरे स्वामी मेरे सौन्दर्य्यपर इतने रीझ कर मतवाले हो गये हैं। सुन्दरी तो न जाने हज़ारों-लाखों कितनी ही हैं, पर वे क्या सभी मेरी तरह पिञ्जरबद्ध हिरनकी नाईं सतायी जाती हैं? मेरा जैसा रूप है, अगर उसीको सुन्दरता कहते हों, तो फिर उसके लिये इतना पागलपन काहेको? स्वामी कहते हैं कि, उनकी आँखोंसे यदि कोई देखे, तो मैं निश्चयही सुन्दरी प्रतीत होऊँगी, पर इससे क्या? सुन्दरी होनेसे मुझे लाभ क्या है? यह सुन्दरता तो मुझे बोझ हो गयी है—रात-दिन मैं यही सोचा करती हूँ कि, कैसे इस कर्म-कष्टसे छुटकारा पाऊँ? मेरी देवरानी तो गोरी नहीं हैं--सुन्दरी भी नहीं हैं—काली हैं, कुचैली हैं, तोभी देवरजी उनको लेकर सुखी हैं। वह भी अपने स्वामीकी चरण-सेवा कर संसारका सुख लूट रही हैं और अपने नारी-जन्म को सार्थक कर रही हैं, लेकिन मैं खूबसूरतही होकर वह सुख कहाँ पाती हूँ?

(५)

मेरे ससुर डिपुटी कलक्टर हैं। बङ्गालसे वे एकदम आरा चले आये; उनकी बदली यहीं की हुई। उनके साथ-

साथ हम सब लोग यहाँ चले आये। पश्चिमी शहरमें रहते-रहते हम लोगोंको यह देश बङ्गालसे कहीं अच्छा मालूम पड़ने लगा। यहाँकी आबोहवा हम लोगोंको बड़ी हितकर जान पड़ी। खैर, नये स्थानमें सब नये-नये परिवर्त्तन हुए पर मेरे स्वामीका मन नहीं बदला। वह ज्योंका त्यों रहा। आखिरमें मेरे एक कन्या हुई, उसका नाम पड़ा 'इन्दुबाला'। इन्दुबालाकी पैदाइशके बादसे मुझे कुछ-कुछ स्वतन्त्रता मिलने लगी।

(६)

हमलोग जितने आदमी आरे आये, उनमें एक राजकृष्ण पण्डित भी हैं। वे घरमें हमारे छोटे-छोटे देवरों, भतीजों, भाञ्जोंको पढ़ानेके लिये रक्खे गये हैं। जब सब कोई आरे आने लगे, तब वे भी दुम हिलाते अपना मनहूस क़दम यहाँ ले आये। उनको अगर कोई दिल्लगीबाज़ देख पावे, तो निश्चय ही उनको बेडौल सूरत देखकर घण्टों तक क़हक़हा लगावे। उनकी देहका रङ्ग पके जामुनके समान है या जली हुई लकड़ीके कोयलेका सा, सो ठीक नहीं कहा जा सकता। हाँ, मेरी ननदने उनका उपनाम रख दिया है "कागोंके सरदार"। उनका यह नाम धीरे-धीरे खूब प्रसिद्ध भी हो चला है। इसके अतिरिक्त उनकी छोटी-छोटी आँखें, बन्दरका सा चेहरा, मोटा मुसण्डा डील डौल देख मुझे तो थरथरी सी आने लगती है।

मेरी एक जेठी ननद गयाके एक मुन्सिफ़की व्याही हैं। बाबूजीकी बदली आरेको हुई, यह सुन वे झट बड़े दिनकी छुट्टीमें अपने स्वामीके साथ आ धमकीं। मैं जबसे ससुराल आयी हूँ, उसके पहलेहीसे वे अपनी ससुरालमें थीं। मेरी उनकी पहले-पहल देखा-देखी यहीं हुई। वे आतेही मेरे ऊपर रौब-दौब जमाने लगीं, डाँट-डपट भी करने लगीं। बात-बातमें फ़टकार बताती और झिड़कियाँ देने लगतीं—कभी-कभी 'अति प्रसन्ने गालीं ददाति' भी होने लगा। मैंने कभी ऐसी डाँट-डपट या मार गाली नहीं सही थी। मायकेमें माँ बापके लाड़-प्यारमें पली, ससुरालमें सास, ससुर, स्वामी सबने अबतक मुझे बड़े आदरसे रक्खा, सो पहलेही बार आयी हूँ। इसलिये पहले-पहल तो ननदका तिरस्कार मुझे बड़ा प्रिय मालूम होता था, किन्तु अन्तमें मेरी यही ननद मेरा सर्वनाशही करके टगड़ी हुई।

(७)

हम दोनों स्वामी-स्त्री जिस कमरेमें सोते हैं, उसीके पिछवाड़े नहानेका कमरा है, वहीं 'नागराज' पण्डित सोते हैं। माघके महीनेमें धीरे-धीरे कोहरा पड़ रहा था, जाड़ेके मारे बदन ठिठुर रहा था, इसलिये मैं बग़लवाले बरामदेमेंसे अँगीठी लाने गयी—वह नहानेवाले कमरेमें रक्खी हुई थी। वहाँ जाकर अँगीठी ले, मैं ज्योंही पलटा चाहती हूँ त्योंही रास्तेमें मेरी मुन्सिफ़ानी ननद मिलीं। वे कहने लगीं,—"क्यों बहू!

राजकन्या भी तो नहानेवाले कमरेकीही ओर गया था न? तुम वहाँ क्यों गई थीं?" मैंने कहा,—"दीदी! उस काले-कलूटेका हाल तुम जानो कि कहाँ गया है, कहाँ नहीं। मैं तो अँगोठी लाने गयी थी, लेकर तापने जाती हूँ। और अगर तुम्हें विश्वास हो कि वह कलूटा मेरेही पीछे-पीछे गया था तो, समझ लेना कि तुम्हारे पाँच भाइयोंके ऊपर यह एक छठा भी पैदा हुआ।" लेकिन मेरी दिल्लगीसे वे जलकर खाक होगयीं। उसी दम उन्होंने मेरी बदनामी करनी शुरू की। भोर होते होते घरके सभी प्राणी मेरे झूठे कलङ्की बात सुन मेरे नामपर गालियाँ देने लगे। बातें स्वामीके कानों तक गयीं। सासुजीने उनसे आकर कहा,—"ऐसी कलङ्किनीको अब मैं छिनभर अपने घरमें रहने देना नहीं चाहती। तुम इसे जाकर नैहर पहुँचा आओ।" ससुरजीने कहा,—"देखो लल्लन! अगर तुम मेरे साथ रहना चाहो, तो इस चुड़ैलको छोड़ दो; यदि उसे रखना चाहो तो तुम दोनों अभी मेरे घरसे अपना मुँह काला कर जाओ।" मेरे स्वामीने उनकी आज्ञा सर नवाकर स्वीकार की।

(८)

रातको स्वामी मेरे कमरेमें आये। मुझे देखतेही उनकी आँखें तर होगयीं। वे कहने लगे,—"फूलकुमारी! तुम्हें आज अपने नैहर जाना होगा। शायद इस जन्ममें फिर भेंट नहीं

होगी। तुमको हालात तो सब मालूम ही होंगे। तुम्हारे भाईको तार दे दिया है, वे स्टेशनपर मौजूद रहेंगे।"

मैं अपनी आँखोंका जल साड़ीसे पोंछती हुई बोली, "स्वामी! किस अपराधमें तुम इस अट्ठारह बरसकी मेरी चढ़ती जवानीमेंही मुझे अथाह समुद्रमें ढकेल रहे हो? मेरी जीवन-नौका कौन खेवेगा? अपनी नन्हींसी बच्चीका मुँह देखकर भी तो मेरा अपराध क्षमा कर दो।"

स्वामी—"पिता माताकी आज्ञा मैं नहीं टाल सकूंगा, तुम अपनी गठरी-मुटरी दुरुस्त करो।"

मैं—"उस काग पण्डितके मनमें पाप था कि पुण्य, सो दैव जाने; लेकिन हे मुझ अभागिनके परमेश्वर! मैं तुम्हारे इन पूजनीय चरणोंकी शपथ खाकर कहती हूँ कि, बूँदी बादर और अँधियारीके मारे मैं राजकृष्णको कौन कहे, किसीको भी नहीं देख सकी। इस समय मुझे कोई सीता-सावित्री मान नहीं सकता, सो मैं समझ रही हूँ; क्योंकि बड़े विकट असामीके पाले पड़ी हूँ—मेरे कलङ्ककी कथा ज़ोर शोरसे चारों तरफ फैल गयी है। लेकिन मुझे केवल तुम्हारी आशा थी। वह आशा भी जब मुझे छोड़ चुकी, तब और गठरी-मोटरीका कुछ काम नहीं है। मैं यही पाँचगजी पहने यहाँसे चलूँगी और कुछ नहीं चाहती।" यह कह मैं स्वामीके जिन चरणोंको आजतक पा नहीं सकी थी, उन्हीं पाद-पङ्कजोंको आँसुओंसे तर करने लगी। स्वामीका पैरोंके साथ-ही-साथ कलेजा भी

शायद घुलकर पानी हो गया। वे बोले,—"प्यारी! इस तरह रो रोकर जी छोटा मत करो। मैं क्या करूँ? बहुत विवश होकर मुझे तुमको अलग करना पड़ता है। परमेश्वर एक अलक्ष्य वस्तु है। देवी-देवता आँखोंकी ओटमें हैं, पर माता-पिता येही दोनों संसारके प्रत्यक्ष देवता हैं। इनकी आज्ञा टालना घोर अधर्म है, सो मैं कैसे करूँ?"

यही कहकर स्वामी मेरे कमरेसे बाहर हो गये। पेड़से चुए हुए कुसुमकी भाँति मैं पटसे ज़मीनपर गिर पड़ी।

(८)

मैं नैहर क्या आयी—एकदम स्वर्गसे सातवें पातालमें गिर गयी। हाय! स्वामीका सौन्दर्य-मोह अगर इसके पहलेही छूट गया होता, तो इतना नहीं अखरता। खैर स्वामीका भवन मेरे लिये सपनेकी सम्पत्ति हो गया। अब वहाँ मेरे स्थानपर एक और रूपसी मेरे स्वामीका घर नन्दनकाननसा बनाये हुए है। स्वामीने इस स्त्रीसे दो लड़के भी हुए हैं। मेरे जीवनका एकमात्र अवलम्बन मेरी 'इन्दुबाला'ही है। हालहीमें मैंने एक धनी मानी गृहस्थके वर उसकी शादी कर दी है। वह हर दूसरे तीसरे दिन मेरे यहाँ आया करती है और मेरा प्यारा दामाद मेरे बेटेका अर्मान पूरा करता है।

मैं सधवा होकर भी विधवा हुई, पर इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। कारण, इस समय मुझे अपने सुखकी चाह नहीं है। मेरे स्वामी अपनी चन्द्रभागाको लेकर सुखी हैं, यही क्या मेरे

लिये कम सौभाग्यकी बात है? पुरुषकी जाति स्वार्थी होती है, लेकिन स्त्रीका जन्म आत्मत्यागका आदर्श दिखानेके लिये होता है। जिस स्वामीने मुझे पहले-पहल इतने आदरके साथ रक्खा, फिर उन्होंने मुझे पैरोंसे ठुकरा दिया—पर इससे क्या? मैं तो उनकी समाचार पाकर आनन्दके अथाह अर्णव (समुद्र) में डूबने उतराने लगती हूँ। सो क्यों? यह मैं नहीं कह सकती। देवता दर्शन दें या न दें—कृपा करें या न करें, यह उनकी इच्छा पर निर्भर है, पर भक्त थोड़ेही अपने इष्ट देवका गुणानुवाद या ध्यान करनेसे चूकता है? कभी नहीं। "वह उनकी निशानी है, यह पहचान हमारी।"

मनोरमा।

(१)

"अम्मां! क्या तुम्हारे यहाँ उचित-अनुचितका विचार नहीं है? हाय! तुमने कैसे, किस हृदयसे इस चम्पाके कुसुम पर वज्र गिराया? विधाता! तुम्हारे कर्त्तव्यमें आग लगे!—मनोरमे! हाय! इस दशामें तुझे देख, मेरा हृदय टूक-टूक हो रहा है!"

यह कहकर पाण्डेयजीकी बड़ी पतोहू ताराने मनो-रमाको गोदमें ले आँखोंसे आँसू गिराना आरम्भ किया; किन्तु मनोरमा अपनेको छुड़ा वहाँसे भाग चली। पीछे-पीछे तारा भी दौड़ी, और आख़िर मनोरमाका आँचल पकड़, उसे ला अपने पास बैठाया, और आइना, कङ्घी लेकर उसके बाल सँवारने लगी।

मनोरमाने विरक्ति-सूचक कातर-कण्ठसे कहा:—"छिः भाभी! यह क्या करती हो? मुझे क्या यह शृङ्गार पटार अच्छा लगता है? मैं अब किसके लिये शृङ्गार करूँगी? मेरी

माँगमें सिन्दूर तो है नहीं! मेरे शृङ्गार की बहार देखने-वाला अब कौन है? भाभी! तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। मुझे अधिक न लजाओ।

इतना कहकर अपनी आँखोंको उसने आँचलसे ढँक लिया! सामनेही आइना था, उस आइनेमें मनोरमाका, सादे सफ़ेद कपड़ोंसे ढँका हुआ मुखमण्डल शरत ऋतुके उजले उजले मेघोंसे ढँके हुए पूर्ण-चन्द्रकी तरह प्रतिविम्बित हुआ। पीछेसे उसे ताराने देखा। देखकर समझ गयी कि मनोरमा रो रही है। उससे भी नहीं रहा गया। उसकी भी बड़ी बड़ी आँखोंसे मुक्ताविन्दु गिरने लगे, किन्तु उसने माया बाँधना नहीं छोड़ा। बोली—"बच्ची! तुम्हारे इतने बड़े बड़े और घने बाल हैं कि जिन्हें मैं एक मुट्ठीमें पकड़ नहीं सकती। हा दैव!"

मनोरमा—"बड़ी भाभी इन बालोंको मैं काट डालूँगी। देखो बाबूजीने भी उस समय इन बालोंको नहीं कटवाया। माँने भी अपने हाथोंसे इन्हें नहीं काटा, अब मालूम होता है मुझेही इन बालोंमें कतरनी (कैंची) लगानी होगी।"

तारा—"बिधाता! बिधवा होकर भी स्त्रियाँ क्यों जीती रहती हैं? तू यदि मर गयी होती तो मैं रोती ज़रूर, किन्तु वह रोना एक दिनके लियेही होता; इस समय तो अब रोज़ रोज़ देखूँगी, रोज़ रोज़ रोऊँगी। इसेही दुःखकी ज्वाला कहते हैं, तूही वह दुःखकी ज्वाला है।"

मनोरमा—"तुम लोगोंका दीर्घनिश्वास इस दुःख ज्वालाके

अनुकूल वायु है, तुम लोगोंकी आँखोंका जल इसकी घृताहुति है, और यह केशविन्यास, रूपशृङ्गार आदि इस ज्वालाका धूम है। भाभी! क्या मेरी यह बात झूठी है?"

तारा अब आगे बोल न सकी। उसने मनोरमाकी आजानुविलम्बित केशराशिको वेणीबद्ध कर उसमें एक सुन्दर गुलाबका फूल लगा दिया। मनोरमाको अब छुट्टी मिली। वहाँसे उठकर वह धीरे-धीरे एक दूसरे घरमें चली गयी।

(२)

श्रीयुक्त रामदीन पाण्डेय एक लब्धप्रतिष्ठ गृहस्थ, सद्-ब्राह्मण, सदाचारी एवं दाता हैं। उस गाँवके सभी लोगोंका यह विश्वास था कि, पाण्डेय महाशयहीके पुण्यसे संसार चल रहा है; इतनाही नहीं, यदि कोई पड़ोसी अत्यन्त प्रातःकालमें उनका दर्शन करता था—तो मन-ही मन अपना अहोभाग्य समझता था और सोचता था—आजका दिन निर्विघ्न समाप्त होगा; किन्तु संसारमें पुण्यात्मा होनेहीसे क्या, पूर्वकृत कर्मों के फल भी तो साथ हैं। सब सुख रहनेपर भी पाण्डेयजी न जाने अपने किस पूर्व दुष्कर्मसे सांसारिक सुखोंसे वञ्चित हैं। उनके तीन लड़के हैं, जिनमें दो तो लापता हो गये हैं, और एक जो सबसे बड़ा है वह जन्मान्ध है। कन्या एक मनोरमा है, पर वह भी इस समय वैधव्यकी दुसह यन्त्रणा भोग रही है। सांसारिक सुख यदि पुण्यका फल-स्वरूप है, तो पाण्डेय-

जीके पुण्यको पुण्यमें गणना करना युक्तिसंगत नहीं। किन्तु स्वयं पाण्डेयजी इन सब सांसारिक दुःखोंसे कभी दुःखित नहीं देखे गये। आप सांसारिक बातोंको भी किसीसे नहीं कहते थे। उस प्रशान्त सुखमण्डल पर कभी भी चिन्ताकी काली रेखा नहीं देखी गयी। वे घड़ीके काँटेकी तरह नियत समयपर रोज़ पूजा-पाठ आदि सन्ध्यावन्दन कर अपना गृह-कर्म करते थे। सन्ध्याका समय है। गृहस्थोंके घरमें दिये जलाये जा रहे हैं। पाण्डेयजी सन्ध्या समाप्त कर दुर्गापाठ कर रहे हैं। इसी समय घरकी मालकिन पण्डितानी भी उन्हींके निकट आकर बैठ गयीं और चुपचाप बैठे-बैठे पति-देवके सुखसे दुर्गास्तवपाठ सुनने लगीं। पाठ समाप्त होनेपर दोनोंने सविनय जगदम्बाको नमस्कार किया।

"यह कौन! क्या तुम हो? तुम यहाँपर कब आयीं? शिवशङ्करको कुछ क्लेश दिया या नहीं? क्या सभी भोजन कर चुकीं? मनोरमा कहाँ है? उसके खानेके लिये आज कुछ विशेष तैयारी कर देना, क्योंकि कल एकादशी है।" यह कहकर पाण्डेयजी दुर्गापाठकी पुस्तक बाँधने लगे, किन्तु इन बातोंको सुन बिचारी गृहिणी रोने लगीं। गृहिणीकी वह रोदन-ध्वनि धीरे-धीरे भ्रमर गुञ्जन कैसे रवमें परिणत हुई। उस रोदनध्वनिसे सम्पूर्ण बस्ती प्रतिध्वनित हो उठी। पाण्डेयजीका गला भर आया। बोले—"मैं देखता हूँ तुम अब मुझसे देश छुड़ाओगी, रामशङ्कर और दयाशङ्करका अब मुझे

अनुसरण करना होगा। जो होना था, वह तो होही गया अब रोना क्या? मालुम होता है, पूर्व जन्ममें हमदोनोंने कोई बड़ा पाप किया है, उसका फल हम लोग भोग रहे हैं। किन्तु रोनेसे क्या लाभ है? मनोरमा तुम्हारा रोना सुनकर और घबरायेगी। उसका मुख देख तुम्हें धैर्य रखना चाहिये। उसे भी धैर्य देना चाहिये। देखो, मेरे संसारकी मानरक्षा करो।" रुक्मिणीने मुखपर आँचल दे रोते-रोते अस्फुट स्वरसे कहा—"अरे! अब मुझसे सहा नहीं जाता। हाय! इस समय मेरा कलेजा कैसा करता है! यदि मैं आज पत्थर होती, तो फट जाती, मिट्टी होती तो धूल हो जाती, पुरुष होती तो पागल हो जाती, अभागी स्त्री की देह है, शायद इसीसे सब सह्य होता है।"

पाण्डेय—"लड़कीका खाना-पहनना देख यदि तुम्हें इतना कष्ट होता है, तो उसे उसकी ससुराल भेज दो। वे लोग बनारसके लब्ध-प्रतिष्ठ धनवान व्यक्ति हैं। मनोरमाको वहाँ खाने पहननेका कुछ कष्ट न होगा और वह वहाँ रहेगी तो हम लोगोंकी विपद् भी दूर होगी। मेरी उमर तो अब भगवानका ध्यान करनेकी हुई है, इस समय मैं दूसरेकी चिन्ता क्यों करूँ? मैं कलही बनारस चिट्ठी लिखता हूँ, वे लोग आकर उसे लिवा ले जायँगे। जिसके भाग्यमें जैसा लिखा है, वह वैसा भोग करेगा। हमलोग इस विषयमें क्या कर सकते हैं?"

जिस दिन यह सलाह हुई, उसके सात दिन बाद मनोरमाका देवर आकर उसे लिवा ले गया।

(२)

बनारसके ठठेरी बाज़ारकी एक गलीमें मनोरमाके ससुरका मकान है। मनोरमाके ससुर बनारसके उच्च कुलके प्रतिष्ठित ब्राह्मण हैं। समाजमें उन लोगोंकी यथेष्ट मान-मर्यादा है। ज़मीन्दारी भी उनके यथेष्ट है, जिससे खासी आमदनी होती है। और उस बड़े भारी परिवारका सब खर्च इसी आमदनीसे चलता है।

मनोरमाकी तीन जेठानियाँ हैं। सबमें छोटी यही है। आज यह अपनी उन्हीं तीनों जिठानियोंके साथ कोठेपर बैठी रहस्य-पूर्ण बातचीत कर रही है।

मनोरमा—बहन! मुझे भी तुम लोगोंको देखना होगा। तुम लोगोंके मुखसे कहानीकी तरह सुनकरही मेरी साध नहीं मिटती। मुझे तुम लोगोंको देखनाही होगा।

मँझली बहू—देखना जो देखना। तुम्हें तो इस ज़िन्दगीमें वह सुख भोगना है नहीं, तुम देख करही अपनी साध मिटा लेना।

बड़ी बहू—छिः! यह तू कैसी बात कह रही है। तुम जैसी अबला हो, वैसीही बातें भी कह रही हो। इसेही बढ़ती हुई आगमें खर डालना कहते हैं। (मनोरमासे) बहन! तुम इन सब बातोंमें कदापि मत उलझो। तुम जप-

तप करो, पूजा-पाठ करो और हम लोगोंके लड़कोंकी मङ्गल-कामना करो। कहीं टूटी हुई मिट्टीकी कलसी फिर जोड़ी जा सकती है?

मनोरमा—नहीं बड़ी दीदी! तुम मना मत करो, मैं ज़रूर देखूँगी। अब मैं रोज-रोज इन लोगोंके मुखसे ऐसी बातें कहानीकी तरह सुनना नहीं चाहती हूँ। छोटी बहू! जिस समय देवरजी घर पर आवें उस समय मुझे ख़बर देना। ज़रा एकबार देखूँ तो सही। 'विषवृक्ष' पढ़ चुकी हूँ "कृष्णकान्तका दानपत्र" भी पढ़ चुकी हूँ, जब साध उत्पन्न हुई तो उसे मिटानाही समुचित होगा।*

बड़ी बहू—तब तुम मरो। चली हैं धधकती हुई आगमें गिरने। मैं देखती हूँ, तुम्हारा भाग्य अब फूट गया। मरना हो तो आपही मरो, किसी दूसरेको मारो मत—किसी दूसरेके सुख-संसारमें कालिमाकी यवनिका मत गिराओ।

यह सुन मनोरमा बहुत देरतक मुँह फुलाये बैठी रही। किसीसे कुछ भी नहीं बोली। उसको चुपचाप बैठी देख बड़ी बहू चली गयीं, साथ-ही-साथ मझली-बहू भी गयीं, केवल छोटी बहू बैठी रही। मनोरमाने अवसर देख धीरे-धीरे कहा—"प्यारी दीदी! मेरे हृदयमें उत्सुकताका भयङ्कर

---

* विषवृक्ष और कृष्णकान्तके दानपत्रका हिन्दी अनुवाद छप कर तैयार है। दाम प्रत्येकका एक एक रुपया।

भूत उछल-कूद मचा रहा है, मैं अब अवश्य देखूँगी। बहन! तुम अपने मनमें दूसरी बात मत समझना, मेरी इस साधको मिटाओ। आज रातको मैं ठीक रहूँगी, सीढ़ीकी ओर जो तुम्हारी कोठरीका जङ्गला है, वहीं पर खड़ी होकर मैं देखूँगी। तुम घरका दीया बुताना मत।"

छोटी बहूने माथा हिलाकर अपना अभिमत प्रकाश किया।

(४)

मनोरमा अपनी ससुरालमें आकर बिलकुल नयी हो गयी है। वह इस समय बढ़िया साड़ी पहनती है, अपने शरीरमें साबुन लगाती है, नाना प्रकारके सुनहले गहनोंको व्यवहारमें लाती है, अनेक प्रकारकी रसोई बनाकर खाती है। पान, घी, दूध, बादाम, पिस्ता आदिकी तो कमीही नहीं, किन्तु हाँ कमी भी है। वह कमी है, माँगमें सिन्दूरकी और सब अङ्गोंमें सधवाओंके लक्षण लक्षित हैं।

सङ्गके दोषसे—शिक्षाके दोषसे, मनोरमाके स्वभावमें यह परिवर्त्तन हुआ है। मनोरमाकी सास मनोरमा को विधवा ब्रह्मचारिणीके भेषमें देखना पसन्द नहीं करती हैं। वे प्रायः कहा करती हैं -"हाय! मेरी यह छोटी पतोहू जिस समय सादा कपड़ा पहनकर मेरे सामने आवेगी, उस समय क्या मैं जीती रहूँगी? मेरी और पतोहू जैसी रहती हैं, जैसा खाती हैं, जैसा पहनती हैं, छोटी बहू भी वैसीही रहेगी। जो होना

था वह तो हो गया, अब क्या इसीसे किसी का खाना-पहनना भी बन्द किया जायगा?" बस फिर क्या था? मनोरमाका पौबारह पड़ गया। उसकी जैसी इच्छा होती है, वैसाही करती है, जो इच्छा होती है, वही खाती है। मनोरमा एक प्रकारसे मुँहलगी भी हो गयी है। जिठानियाँ किसी कामको न करनेके कारण यदि इसे एक बात कहतीं, तो यह दस बातें कहती। सास भी प्रायः इसीका पक्ष लेकर दूसरी पतोहुओंका तिरस्कार करती हैं। अब क्या? मनोरमाकी बातोंके सामने किसीकी कुछ भी नहीं चलती है।

जल पृथ्वीपर गिरनेसेही मैला हो जाता है और बहते-बहते धीरे-धीरे नीचेसे नीची भूमिमें जा गिरता है। जितने समय तक जल किसी धातुके आधार पर या किसी बर्त्तनमें रहता है, तबतक पीनेके योग्य बना रहता है, किन्तु एकबार भी जहाँ पृथ्वीपर गिरा—पङ्किल हुआ। मनकी प्रवृत्ति मनमें छिपाकर रखनेसे एक प्रकार रह भी सकती है। और यदि बहुत दिनों तक हृत्कोटरमें छिपाकर रखी जाय, तो सम्भव है कि उसका सब मैल दूर भी हो जाय—वह निर्मल स्वच्छ एवं पवित्र हो जाय।

मनोरमाकी मानसिक प्रवृत्ति इतने दिनों तक मनमें छिपी थी, इसी तरह बहुत दिनों तक रहनेसे एक दिन न एक दिन अवश्य स्वच्छ एवं पवित्र हो जाती, परन्तु मनोरमाने विलासके मार्गमें अपनी प्रवृत्तिको लुढ़का दिया। फिर रहा कहाँ?

वह प्रवृत्ति इस समय द्रुत वेगसे धूलि-पूर्ण पृथ्वीके ऊपरसे बह चली है। विष्ठा-चन्दनका विचार न करके अपनी तरल देहमें सब चीज़ोंको लगाकर मिलाती हुई प्रवृत्ति अन्तमें पापके चिरलवणाक्त अनन्त समुद्रमें मिल जायगी। मनोरमाकी अब रक्षा नहीं है।

(५)

अँधेरी रात है। इतना बड़ा बनारस शहर भी आज अन्धकारमय दृष्टिगोचर हो रहा है। मानों आज मेघके प्रकाशने भी अन्धकारसे युद्धमें हारकर चन्द्रमाहीका अनुसरण किया है। कभी-कभी जब कहीं किसी गाड़ीके जानेका झङ्कार शब्द आ जाता है, तब गृहस्थोंका निस्तब्ध गृह उससे प्रतिध्वनित होकर मानों सजीव हो उठता है। गलीसे होकर एक-आध मनुष्य जब कभी-कभी जाते हैं, तब ऊपर दो मंज़िलेसे प्रकाशित वातायन-पथसे देखनेपर मालूम होता है कि, मानों अन्धकारका गोला मुखरित होकर चला जा रहा है।

सब निस्तब्ध है—सब अन्धकारमय है। केवल छोटी बहूके घरमें दिया जल रहा है और दरवाज़ेके समीपही सीढ़ीपर मनोरमा बैठी है। उसके हृदयमें मानों आग जल रही है। वह सीढ़ीके दरवाज़ेकी एक ओर खड़ी-खड़ी एकटक झिल-मिलीकी ओटसे भीतरका दृश्य देख रही है।

धीरे-धीरे किवाड़ खोलकर एक बीस वर्षके सुन्दर युवकने भीतर प्रवेश किया। छोटी बहू स्वर्णलतिकाकी तरह दग्ध:

फेननिभ शय्यापर सो रही थी। धीरे-धीरे छोटे बाबूने उस लतिकाके पार्श्वमें शयन किया। घरका दीया भी बुझा दिया गया।

काले सर्पकी तरह एकबार फुफकार कर मनोरमा वहाँसे उठकर बरामदेमें चली गयी। भादों मासकी अमावस्याका वह अन्धकार मनोरमाकी तीक्ष्ण नयन-दीप्तिसे विद्ध होने लगा। सर्पकी पूँछपर पैर पड़नेसे वह जैसे गरजता है, वह जैसे अपने व्यर्थ प्रयाससे पाषाणको काटने दौड़ता है, उसी तरह मनोरमा भी उस अँधेरी रातमें दीर्घनिश्वास त्याग विधाताको लक्ष्यकर व्यर्थ अभिसम्पात करने लगी।

इस समय मनोरमाके हृदय-मन्दिरमें भयावनी आग लगी है। उसके बुझनेकी सम्भावना नहीं। निश्चय है, वह उसको भी जला डालेगी।

(६)

एक नाव अस्सी-घाटसे बड़ी तेज़ीके साथ पश्चिमकी ओर जा रही है। उसी नावपर एक सुन्दर युवक पुरुष एक स्त्रीकी जाँघपर अपना माथा रखे हुए लेटा हुआ है। अरे! यह क्या! यह कौन? यह तो वही मनोरमा है! मनोरमा ऐसी पीली क्यों पड़ गयी है? उसकी दोनों आँखें आज प्रभाहीन क्यों देख पड़ रही हैं? अरे! आँखोंके किनारे-किनारे काली भी तो दिखाई पड़ रही है। सुन्दर सरस अधर सूखकर धूलिपूर्ण हो गये हैं।

सहसा उसकी आँखोंसे आंसू गिरते देख युवकने कहा:—"प्रिये! तुम रो क्यों रही हो? मैंने तो कह दिया है कि तुम्हें परिणीता भार्य्या (रखेल) की तरह रखूँगा—नाना प्रकारके सुखसे सुखी रखूँगा फिर रोना क्यों?"

मनोरमा—"तुमने मुझसे विवाह करनेकी प्रतिज्ञा की थी। फिर अब ऐसा क्यों कह रहे हो? मैंने इसी आशासे इतने सुखकी अपनी ससुराल त्याग कर दी है कि हम तुम पति-पत्नी-भावसे रहेंगे। फिर आज परिणीताकी बात कैसी?"

युवक—"मनोरमा! भला यह कैसे हो सकता है। मुझे माता हैं, पिता हैं, आत्मीय-स्वजन और कुटुम्ब हैं और देखो मुझपर समाजका शासन भी है; फिर भला मैं तुम्हारे साथ कैसे विवाह कर सकता हूँ।"

मनोरमा—"तब तुम मुझे लाये क्यों? मैं सुखमें, दुःखमें, यौवनमें, वार्द्धक्यमें तुम्हारी होकर रहूँगी, और तुम मेरे होकर रहोगे—इसी आशामें, परकालकी भी भावना भूलकर मैं तुम्हारे सङ्ग आयी उसका यह नतीजा?"

युवक—"देखो मनोरमा! मैं तुम्हारा हूँ, मेरी ऐश्वर्य-सम्पत्ति भी तुम्हारी है, अब इससे अधिक मनुष्य मनुष्यको क्या दे सकता है?"

मनोरमा—"बहुत कुछ दे सकता है। देनेकी अभि-

लाषा होनेपरही मनुष्य दे सकता है। क्या अपना संसार-सुख तुम मुझे नहीं दे सकते हो? मैं और अधिक कुछ नहीं चाहती, तुम्हारी दासी होकर रहूंगी, तुम्हारे घरकी लौंडीका काम करूंगी, मुझे यही इतना अधिकार दो, मैं और कुछ नहीं चाहती।"

युवक—"यह मेरी सामर्थ्यके बाहर है। जहाँपर मेरे माता-पिताका पवित्र आसन है, वहाँपर मैं तुम्हें कैसे जाने दे सकता हूं? इसपर भी अड़चन यह है कि तुम विधवा हो।"

मनोरमा—"तुमने अभीतक विवाह तो किया नहीं है। इच्छा करनेहीसे विधवा-विवाह कर सकते हो। मेरे साथ विवाह क्यों नहीं करते? क्या मैं तुम्हारी पत्नी होनेके योग्य नहीं हूं?"

युवक—यह मैं कैसे कह सकता हूं? तुम तो मेरे रूपपर मुग्ध होकर विलास-सुखसे सुखी होनेके लिये मेरे यहाँ आयी थीं, मैंने भी तुम्हें देख सत्यपथसे भ्रष्ट होकर दुष्कर्म कर लिया है। जब दुष्कर्म कर लिया है तब जीवनभर तो उसका फल भोगनाही पड़ेगा। संसारमें आकर तुम्हारे प्रेम-फंदेमें फँसकर मैंने अनेक अपकर्म किये हैं। देखो, कालेजकी पढ़ाई छूटी, बी० एल० परीक्षाकी चिन्ता छोड़, तुम्हारे साथ-साथ भाग आया। वकालत तो पैसेके लिये है। मुझे अपना बहुत द्रव्य है उसीसे मैं अपनी और तुम्हारी जिन्दगी खुशीके

साथ बिता सकता हूँ। पैसे और रोज़गारकी चिन्ता दूसरे जन्ममें की जायगी। पर हटाओ इसको, तुमने भी कहाँ का झमेला निकाला! आओ, इस समय ज़रा आनन्द करें फिर देखा जायगा।

यह कहकर युवकने मनोरमाकी कमरमें हाथ लगाया; किन्तु मनोरमाने धीरे-धीरे उसका हाथ छुड़ा, लम्बी साँस लेकर कहा.—"नहीं जानती कि मैंने क्या दुष्कर्म किया है? हा! इसकी अपेक्षा मेरा मरना ही ठीक था।"

युवक—"छि: छि:! मनोरमे! यह तुम भला क्या कर रही हो? ऐसी बात भी कही जाती है? आओ, इस समय हम दोनों अपने अपने हृदयकी आग बुझा तृप्ति करें।"

मनोरमा—"नहीं, सो होगा नहीं। तुम मेरे साथ अपना विवाह करो।"

युवक—"देखो, असलमें मेरा ब्याह हो गया है। घरमें मेरी ख़ास पाणिग्रहण की हुई स्त्री है। इस बातको मैंने इस वजहसे तुमसे आज तक छिपाया था कि कह देनेसे तुम हरिणीकी तरह भाग जातीं। आज व्यर्थ हठ करनेपर कहना पड़ा है, पर इससे तुम्हें क्या? तुम तो विलासकी मोहसे अपनेको भूलकर मेरे यहाँ आई हो।. तुम तो मेरे यहाँ विमूढ़ा स्त्री होकर आई हो। मैं तुम्हें वैसेही सोनेके पींजड़ेमें सोनेकी चिड़िया बनाकर पोसूँगा। घबड़ाओ नहीं। फिर तुम अब कहीं जा भी नहीं सकती। इस समय कुछ

तरङ्गित होती हुई दीर्घनिश्वास छोड़कर बोली—"इस समय मेरा मरनाही अच्छा है। आह! जिस सुखकी आशासे मैं यहाँ आयी थी वह सुख नहीं मिला। और जो सुख पा रही हूं वह भी क्षणकालीन है। उस सुखमें दुःखहीकी मात्रा अधिक है। समाज मेरा विरोधी है, शास्त्र मेरा विरोधी है। हाय! मेरा यह लोक, परलोक, दोनों गये। माँ गङ्गे! अपनाही इस अभागिनीको अपने यहाँ जगह दें, बस हृदयकी धधकती हुई आग आपही शमन करें।"

इतना कहकर मनोरमा उस तरङ्गमय गङ्गाके प्रवाहमें कूद पड़ी। उस समय तरल अन्धकारराशिको उच्छलित-कर भगवती भागीरथीमेंसे एक कातर शब्द सुन पड़ा, किन्तु विस्मृतिके तरल प्रवाहमें क्षणभरके बाद सब विलीन हो गया।

अम्बालिका।

जनम अवधि हम रूप निहारिनु

नयन ना तिरपित भेल।

चण्डीदास।

देखनेसे तृप्ति नहीं होती है ; किन्तु यह कोई नयी बात नहीं है। जगदाधार भगवान् कृष्णचन्द्र को साँवली छटा देखते हो—वैद्युतिक प्रभायुक्त श्यामल स्निग्ध मेघमालाको तथा अन्यान्य प्राकृतिक दृश्योंको देखते हो—तथा दर्पणमें अपने चेहरेको देखते हो ; परन्तु जैसा मनोयोग पूर्वक देखना चाहिये उस प्रकार देखनेसे देखनेकी श्रद्धा कभी नहीं मिटती। शायद इसी कारणसे किसी हिन्दी-कविने लिखा है :—

"ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि

त्यों त्यों खरी निकरे सी निकाई।"

श्रद्धा न मिटनाही सर्वनाश होनेका मूल है! श्रद्धा न मिटनेसेही हृदयमें एक अननुभूतपूर्व स्वर्गीय आनन्दका सञ्चार होता है। बस श्रद्धाके मिटते ही सबकी इति-

श्री समझो!—सुखकी भी इति-श्री, दुःखकी भी इति-श्री! किन्तु सुखही दुःखको लेकर तुम्हारा संसार बना है, सुख-दुःखकी इति-श्री होतेही संसारकी भी इति-श्री समझो।

(२)

सुन्दरी वास्तवमें सुन्दरीही है। नाममें भी सुन्दरी, गुणमें भी सुन्दरी और देहसे भी सुन्दरीही है। बाहर के दस बोस लोगोंकी नज़रोंमें वह सुन्दरी जँचती है कि नहीं, इसकी खोज-ढूँढ़ करनेकी हमें फ़ुर्सत नहीं। हां, जिन्हें न तो अपने धर्मसे सम्बन्ध है, न अपने कर्त्तव्यसे सम्बन्ध है तथा जिन्हें न तो अपने साहित्यसे सम्बन्ध है, और न जिन्हें इस आख्यायिकाको पढ़ना पसन्द है, वेही इसकी खोज-ढूँढ़ करें। परन्तु हाँ, स्वामी जगन्नाथ बाबू सुन्दरीका केवल सुन्दरीही नहीं देखते हैं; किन्तु उसके गुणसे मुग्ध होकर उसे अत्यन्तही सुन्दरी देखते हैं।

जगन्नाथ बाबू मालदहमें नौकरी करते हैं। जिस समयकी यह कथा लिखी जाती है, उस समय कलक्टरीका सरिश्तेदार कलक्टरीका दीवान कहा जाता था। हमारे जगन्नाथ बाबू भी उसी दीवानीके पदपर नियुक्त हैं। प्रायः देखा जाता है, थोड़ी उम्रमें किसी उच्च पदपर प्रतिष्ठित हो पाश्चात्य शिक्षा-विमण्डित नवयुवकोंके विचार बहुतही नीच हो जाते हैं; इसे पाठक भली भाँति जानते होंगे! परन्तु जगन्नाथ बाबूका स्वभाव-विचार वैसा नहीं हुआ; आप अपनी पहुँचसे

अधिक दान करते हैं। अपने घरपर प्रति दिन दोनों वक्त ५०।६० आदमियोंके भोजनका प्रबन्ध करते हैं। जगन्नाथ बाबू जितना कमाते हैं, उतना खर्च कर देते हैं। धन-सञ्चय करना उनके लिये असम्भव है, इसकी उन्हें कुछ आवश्यकता भी नहीं है। कारण उन्हें सन्तान-सन्तति तो हैही नहीं, माता और पिता भी बहुत दिन पहलेहीसे स्वर्ग चले गये हैं। यों तो जगन्नाथ बाबू के आत्मीय एक नहीं, दो नहीं, असंख्य हैं; बल्कि सम्पूर्ण संसारके धनाढ्यसे भी धनाढ्य तथा दीनसे भी दीन उनके आत्मीय हैं, परन्तु जिस आत्मीय-स्वजन, सगोत्र-वालेसे पिण्ड और जलकी आशा रहती है, वैसे इनके एक भी आत्मीय नहीं हैं। अनवरत अक्लान्त परिश्रम करनेके कारण इनकी थकावट देख उस परिश्रमसे—उस अविश्राम कार्य्यको करनेसे इन्हें मना करनेवाला एक भी नहीं हैं; परन्तु हम इतना अवश्य कहेंगे कि ये अपनी स्त्री सुन्दरी तथा मौसीके साथही रहकर सत्पथके पथिक होकर हम कर्त्तव्यहीन अभागोंसे कम सुखी नहीं हैं।

इस संसारमें जगन्नाथ बाबूके और एक आत्मीय हैं; वे मालदह ज़िलाके मजिष्ट्रेट और कलक्टर प्रसिद्ध रोबिन्सन साहब हैं। कोमलता और कठोरताका ऐसा संयोग, मधुर और रौद्रका ऐसा सम्मिलन और किसी 'सिविलियन'में नहीं देखा गया। उस समय उस ज़िलेके हर्त्ताकर्त्ता रोबिन्सन साहबही थे। उन्हींके प्रभावसे गौड़के जङ्गली

संताल-बेदिया प्रभृति संयत और शान्त हुए। आपहीके सदुद्योगसे इन सब उजड्ड तथा मूर्ख जातियोंने अपनी इच्छासे अङ्गरेजोंकी अधीनता स्वीकार की। यही रौबिन्सन साहब जगन्नाथ बाबूको अत्यन्त मानते हैं। उनके बहुत माननेके कारणही जगन्नाथ बाबू मालदह जिलेके दीवान हैं।

(२)

आज माघी पूर्णिमा है—हिन्दुओंका पवित्र दिन है, आज हिन्दूमात्र गङ्गास्नान करनेके लिये उद्योगी हैं। पश्चिमी हवा धीरे-धीरे बह रही है। हवाके ऊपर शीत छोटे लड़कोंकी तरह घुड़-सवार होकर सूर्य्यरश्मिकी प्रखरताको नष्ट कर रहा है; दरिद्रोंके फटे पुराने वस्त्रोंको इधर उधर हटा उनकी दुबली पतली और सूखी देहमें मानों सुई गड़ा रहा है। दरिद्र, शीतके इस उपद्रवके कारण, घबराकर रो रहे हैं; तथा धनाढ्य व्यक्ति विविध प्रकारके वस्त्रोंको पहन, शीतसे प्रफुल्लित, अतः रागरञ्जित, मुखसे मानों दरिद्रोंके इस कम्पनकी हँसी उड़ा रहे हैं।

आज कारागोलाका मेला है। यहाँ पर कुशी तथा गङ्गाका सङ्गम हुआ है। प्रत्येक वर्ष माघी पूर्णिमाके दिन इस सङ्गम-स्थलपर अत्यन्त समारोहके साथ मेला लगता है। मालदह, पूर्णिया, भागलपुर, राजमहल प्रभृति अनेक जिलोंके अनेक स्थानोंसे लोग इस दिन यहाँ आकर गङ्गा-स्नान करते हैं।

सुन्दरी अपने पतिके साथ गङ्गा-स्नान करनेके लिये आयी है। दीवानजीके लिये एक डेरा पड़ा है। डेरा सङ्गम-स्थानके पासही एक ऊँचे टीलेपर पड़ा है। डेरेमें उनकी बूढ़ी मौसी भींगा कपड़ा पहनकर ठण्डसे काँप रही है—और थोड़ी-थोड़ी देरपर जा-जाकर गङ्गामें डुबकी लगा आती है। जगन्नाथ बाबू अपनी बूढ़ी मौसीका हाथ पकड़ स्नान करानेके लिये ले जाते हैं और स्नान करानेके बाद उन्हें डेरेमें लाकर बैठाते हैं।

सुन्दरी अभी अठारह वर्षकी एक सुन्दरी है। ब्राह्मणकी लड़की है, सम्भ्रप्रतिष्ठ वंशकी है, इतने पर भी दीवानजीकी स्त्री है। फिर भला वह पर्देके बाहर कैसे हो सकती है? किन्तु आज पवित्र तिथि है, स्थान पवित्र तीर्थक्षेत्र है; बस यही कारण है कि आज सुन्दरीके लिये प्रति दिनकी तरह पर्देका ठाट नहीं है। वह एक दासीको ही साथ लिये अपनी इच्छासे गङ्गास्नान करती है, एवं भींगे वस्त्र पहनेही अपनी मौसीकी तरह अर्घ दान कर रही है।

(४)

दीवानजीके डेरेके सामने बड़ी भीड़ लगी हुई है। दीन, दुःखी और कङ्गालोंके मारे वहाँ तिल रखने तक की जगह नहीं है। अचानक भीड़को हटा, एक बालिकाने आकर जगन्नाथ बाबूका हाथ पकड़ लिया। बालिकाकी देहमें कुछ नहीं था, यह भी कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी; क्योंकि केवल

एक फटे कम्बलके टुकड़ेसे वह किसी तरह अपनी लाज रखती थी। बालिकाकी अवस्था लगभग सोलह वर्षकी थी। एक-ब-एक जगन्नाथ बाबूका हाथ पकड़ कर उसने कहा :—"बाबू जी! बड़ा जाड़ा पड़ता है, इस समय बड़ी भूख भी लगी है, मुझे कुछ दो, बड़ा पुण्य होगा।"

"तुम क्या लोगी? दाल, चाँवल, कपड़ा सभी कुछ है; जिस चीज़की तुम्हें इच्छा हो वह लो।"—कुछ उदास भावसे बालिकाकी ओर देखकर जगन्नाथ बाबूने इसी प्रकारके दो चार शब्द कहे।

"मैं चाँवल-दाल लेकर क्या करूँगी? मेरे लिये भला रसोई कौन बना देगा? मैं कपड़ा भी लेकर क्या करूँगी? कपड़ा पहनतेही वे सब उसे छीन लेंगी।"

"तुम कौन हो? क्या तुम्हारे साथ और कोई नहीं है? क्या तुम्हारे पिता-माता नहीं हैं? तुम यदि भात खाना चाहती हो तो इसी तम्बूमें जाकर ठहरो।" आग्रहके साथ इन्हीं दो चार बातोंको कहकर जगन्नाथ बाबूने बालिकाको अपना तम्बू—डेरा दिखला दिया। एक दासी बालिकाका हाथ पकड़कर भीतर ले गई।

सुन्दरीने बालिकाको देखते ही उसे पहननेके लिये एक कपड़ा दिया। बालिका कपड़ा लेकर मूर्त्तिकी तरह खड़ी रही। सुन्दरीने उसे चुपचाप खड़ी देख कर कहा—"लजाती क्यों हो? उस कपड़ेको पहनो।"

"मैं कपड़ा पहनना नहीं जानती; मैंने तो आजतक कभी कपड़ा नहीं पहना!"

सुन्दरी—तब तुम कपड़ा क्यों माँगती थीं?

बालिका—जिनके यहाँ मैं रहती हूँ उन्हींके लिये कपड़ा माँगती हूँ। इस समय—जाड़ेमें—ओढ़नेके लिये मेरे पास एक कपड़ा था; उसे भी आज उन्होंने ले लिया है। मैं उसी कपड़ेको रातके समय जाड़ा पड़ने पर ओढ़ती थी। आज इस मेलेमें जब कोई एक कपड़ा माँगकर ले जाऊँगी तभी मुझे वह मेरा कपड़ा मिलेगा।

सुन्दरी—इस समय वह कहाँ हैं?

बालिका—इसी भीड़में कहीं होंगी, जरूरत पड़ने पर, जब घरपर जाने लगेंगी तो मुझे खोज लेंगी!

सुन्दरी—वह तुम्हारी कौन हैं? क्या तुम्हारे माता-पिता नहीं हैं?

बालिका—हमलोग नटिन हैं। भिक्षाटन करती हैं, छोटी छोटी लड़कियोंका हाथ देखती हैं और गाँव-गाँव घूमती-फिरती हैं। मुझे बड़े जोरसे भूख लगी है, कुछ खानेको दो; तथा इस कपड़ेको मुझे पहना दो।

यों तो प्रायः सभी स्त्रियोंका हृदय स्वभावतः दयार्द्र होता है, परन्तु सुन्दरीका हृदय और स्त्रियोंकी अपेक्षा अत्यन्त अधिक दयाशील था। वह इस भोली-भाली बालिकाकी दुःख-कहानीको सुन कर अपनी आँखोंके आँसुओंको रोक न सकी,

मानो उसके शोककी आगको बुझानेके लिये सुन्दरी स्वयं अपनी दोनों आँखोंसे जल गिरा रही है। अपने मुखको दूसरी ओर फिराकर उसने आँखोंके आँसूको पोंछ दिया। डेरेमें गरम जल था; उसी गरम जलसे उस बालिकाकी देहको भली भाँतिसे धो-धुलाकर एक सुन्दर चूनरी पहना दी। बालिका चूनरी पहनकर डेरेके एक कोनेमें बैठ रोटी खाने लगी और सुन्दरी खड़ी होकर बालिकाको एक टकसे देखने लगी।

बालिका अत्यन्त रूपवती है। यद्यपि माथेपर जटा है, नागिनोंको भी लजानेवाली कुञ्चित केशराशि नहीं है, किन्तु जटा-भारहीसे ग्रीवा और मस्तककी अपूर्व शोभा हो रही है। शरीरका श्यामवर्ण रङ्ग भी काही दर्शनीय है। कार्त्तिक मासको गङ्गाके पानी की तरह, काक-चक्षुकी तरह देहकी शोभा हृदयहरण कर रही है। शारीरिक गठन भी अत्यन्त हृदयहारी है।

सुन्दरी उसकी अनुपमेय छटा देख मनही मन कहने लगी—"नटिन की लड़कियाँ क्या इतनी सुन्दरी होती हैं! यह अवश्य किसी बड़े घरकी लड़की है; वे इसे चुराकर लायी हैं।"

इसी बीच बाहर एक बड़ा हल्ला हुआ। एक रुक्षकेशा, गलित-देहा, प्रौढ़ा रमणी तम्बूके भीतर आकर न जाने क्या क्या बकने लगी। वहाँपर उस समय जितने रहनेवाले थे उनमें

कोई भी उसकी बोलीको न समझ सका। सुन्दरीको देखकर वह ज़रासा ठमक गई। कभी एक नज़र बालिकापर दौड़ाती थी और कभी सुन्दरीपर। सुन्दरीको देखकर उसने कहा :—

"बेटी! इस लड़कीको रखो मत, रखो मत, मेरा कहा मानो! यह तुम्हारा सर्वनाश करेगी।"

"मेरा सर्वनाश करेगी तो करे, तुम्हें कौन पूछता है? चलो हटो यहाँसे।"

"अच्छा यदि इसे रखने की इच्छा हो तो रखो! मेरी इस लड़कीका दाम १० रुपये दे दो।"

सुन्दरीने विरक्त भावसे दस रुपये गिनकर उसे दे दिये। वह बूढ़ी धीरे धीरे उन रुपयोंको लेकर गिनती हुई जाने लगी, जाती बेर सुन्दरीकी ओर देखकर बोली—"जिस समय तुमपर विपद पड़े उस समय गौड़के जङ्गलमें शाह-साहब की मसजिदमें आना, मुझसे वहींपर मुलाक़ात होगी।"

(५)

बालिकाका नाम अम्बालिका है। बालिका अभी तक कुछ भी नहीं जानती—जो जाननेसे मनुष्य, मनुष्य होते हैं, सुख-दुःखका ज्ञान होता है, पाप-पुण्यका विचार होता है, बालिका वह कुछ भी नहीं जानती। बालिकाको किसीका डर नहीं, लज्जा नहीं, सङ्कोच नहीं, सन्देह नहीं, परन्तु बालिकाकी अवस्था सोलह वर्षकी है।

इस समय बालिकाके माथेमें जटा नहीं है। जटाके स्थानमें कुञ्चित केशराशि है। शारीरिक वर्ण भी अब वैसा नहीं है—दिव्य गौरकान्ति उस श्याम वर्णको छटाको दूर कर खिल रही है। सुन्दरीको वह दीदी कहा करती है; जगन्नाथ बाबूको वह कभी भैया, कभी बाबू कहा करती है।

अभी तक अम्बालिका कोई काम करना नहीं जानती; हां, केवल पानका बीड़ा लगाना जानती है। बालिका जितने बीड़े लगाती है, उन सबोंको या तो जगन्नाथ बाबूको खिलाती है या सुन्दरीके मुखमें ज़बर्दस्ती ठूँस देती है। बालिकाको अभी आचार-विचारका ज्ञान नहीं है, उचित-अनुचितका बोध नहीं है। जगन्नाथ बाबू जब कभी पान खानेमें अपनी अरुचि प्रकट करते हैं, तब अम्बालिका उनका गला पकड़ कर उनके मुखमें भी ज़बर्दस्ती ठूँस देती है। उस समय जगन्नाथ बाबू कांप उठते हैं। कौन कह सकता है कि जगन्नाथ बाबू क्यों काँप उठते हैं? अम्बालिकाको भावभङ्गीमें क्याही माधुर्य है।

(६)

सुन्दरी अम्बालिकाको बहुत प्यार करती है. नौकर-चाकर या दूसरा कोई अम्बालिकाको चञ्चलता देखकर यदि उसको कुछ कड़ी बात कहता है तो सुन्दरी उसको आड़े हाथ लेती है। यही नहीं, स्वामी जगन्नाथ बाबू भी यदि कभी अम्बालिकाका किसी अपराधमें कुछ शासन करना चाहते हैं,

तो सुन्दरी स्वामीको भी एकको जगह दस सुनानेसे बाज़ नहीं आती।

इतना प्यार, इतना छोह, इतना आदर और इतने सोहाग रहनेपर भी जिस समय अम्बालिका, जगन्नाथ बाबूका गला पकड़ कर उनके मुखमें पान ठूँसने लगती है, उस समयका वह दृश्य सुन्दरीके कलेजेमें बड़ीही चोट पहुँचाता है। एक दिन सन्ध्याके समय अम्बालिकाने एक बड़ासा पानका बीड़ा जगन्नाथ बाबूके मुखमें रखकर उसका आधा अपने दाँतोंसे काट लिया; इस दृश्यको देखकर सुन्दरीके हृदयका भाव क्रोधमें परिणत हुआ। सुन्दरी स्वामीका हाथ पकड़कर उसी समय दूसरे घरमें ले गई और बोली, "देखो! संसार बड़ाही नीच है। संसार तुम्हारे हृदयकी पवित्रता नहीं देखेगा! इस समय अम्बालिका लड़की नहीं है—रूपवती है, सोलह वर्षकी पूर्ण युवती है। यद्यपि अभी तक उसके हृदयमें पापकी कालिमा कुछ नहीं है परन्तु सङ्ग-दोषसे वह सब-कुछ हो सकता है—वह पाप-पथकी अनु-रागिणी हो सकती है। इसीसे मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि इस प्रकारसे उसको अपने माथेपर मत चढ़ाओ—मुखमें मुख लगाकर पान मत खाओ-खिलाओ! तुम लोगोंका यह व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लगता। जगन्नाथ बाबूने एक दिल्लगी कीसी हँसी हँसकर कहा—"सुन्दरी! डर क्या है? मैं तो आठों प्रहर तुम्हारेही साथ-साथ रहता हूँ—और जो

कुछ करता हूँ सो सब तुम्हारे सामनेही करता हूँ, तब उसमें पाप कैसा ?"

सुन्दरी—मेरे सामने करनेसे पाप भी पुण्य हो जायगा इसका तो ठीक नहीं।

(७)

जगन्नाथ बाबू अपनी स्त्रीकी आज्ञा सुनकर, उसकी ओर देख, एक लम्बा सलाम करके बोले—"जो हुक्म बेगम साहबा! गुलाम हुजूरका हुक्म तामील करेगा।"

लड़कोंको जो कार्य्य करनेके लिये मना किया जाता है, लड़के उसे अवश्य करते हैं। बहुत थोड़े दिनका पैदा हुआ बच्चा संसारके सभी पदार्थोंको नया देखता है--सब वस्तुओंको देखकर उसके मनमें होता है—ऐसा तो कभी देखा नहीं है—इसे एकबार देखूँगा, दोबार देखूँगा, बार-बार देखूँगा। इसके ऊपरसे किसी चीज़को देखनेसे—किसी कार्य्यको करनेसे, उसको रोका जाता है, तो इससे बच्चेको उस चीज़को देखनेको उत्तेजना—उस कार्य्यको करनेकी उत्तेजना, दुगुनी हो जाती है; अनेक विघ्न-बाधाओंके रहते भी गुप्त भावसे वह उस कार्य्यको करताही है। गुप्त भावही तो पापका मूल है!

जगन्नाथ बाबू एक विज्ञ कर्मचारी होनेपर भी भाव-संसारमें वे अभी बच्चे हैं। जिस समय सुन्दरीने अम्बालिकाके साथ इस प्रकारके व्यवहार करनेको उन्हें मना किया, उस

समय जगन्नाथ बाबूके हृदयकी भस्माच्छादित विलास-वह्नि एकबार मानो बल उठी। लज्जा और भयसे वह ज्वाला मानो, वस्त्राञ्चलसे ढकी रही। जगन्नाथ बाबू कुछ सम्हले तो अवश्य—किन्तु मनकी साध खरकी आगके सदृश मन-ही-मन जलने लगी। जगन्नाथ बाबूने अपने मनमें स्थिर किया कि इसके बाद सुन्दरीसे छिपकर हम अम्बालिकासे बातचीत करेंगे। उसके साथ बातचीत करनेसे इन्हें विशेष आनन्द मिलता था। पाठक! इसी प्रकारसे पापभुजङ्ग मनुष्य-हृदयरूपी चन्दनवृक्षको धर लेता है!

(८)

"ऐ! अम्बालिके!! तू मेरे पास नहीं आती, मेरे मुखमें पान नहीं देती?"——इतना कहने पर भी अब अम्बालिका पूर्ववत् हँसती नहीं, उस प्रकारसे जगन्नाथ बाबूके साथ मनो-विनोदके लिये दङ्गा-फ़साद नहीं करती। इस समय अम्बा-लिकाका भावही कुछ विचित्र ढङ्गका हो गया है। सुन्दरीके सामने वह जिस प्रकार बोलती-चालती है, उस प्रकारसे दालानमें या बाहरकी फुलवारीवाली बारहदरीमें एकान्तमें भी जगन्नाथ बाबूके साथ नहीं हँसती, उस प्रकारसे नहीं बोलती। विह्वल जगन्नाथ बाबू अम्बालिकाको बार-बार पुकार रहे हैं, परन्तु अम्बालिका उनके पास नहीं जाती, एक सलज्ज भावसे दूरहीसे चली जाती है।

जिस पदार्थको हृदय चाहता है, उसको न पानेपरही

उसकी आकांक्षा और बढ़ जाती है, मनके अनुसार कार्य्य न होनेपरही—मनके अनुसार करनेके लिये सर्वस्व तक भी लोग न्योछावर करनेके लिये प्रस्तुत हो जाते हैं। जगन्नाथ बाबूने अम्बालिकाके लिये सर्वस्व तक त्यागनेकी मन-ही-मन प्रतिज्ञा की। वह गृह छोड़कर फुलवारीवाले मकानमें रहने लगे ; सन्ध्या-समय सुन्दरीका शुष्क-मुख देखनेके लिये एकबार घरपर आ जाया करते थे किन्तु वह आना आनाही-भर था—उस आनेमें लेश भर भी स्नेहकी मात्रा नहीं, नाम-मात्रके लिये भी उत्कण्ठा नहीं, वह आना लोगोंको दिखानेके लियेही था, किन्तु इतने पर भी अम्बालिका इनकी न हुई, पुष्पके भौंरेकी तरह अम्बालिका एक-एक बार उनके यहाँ जाती थी और फिर सुन्दरताका पङ्ख झाड़कर दूर भाग जाती थी। आशासे, उत्कण्ठासे, नैराश्यके विषादसे, जगन्नाथ बाबूकी वह स्वर्णकान्ति शुष्क हो गई, आँखें धस गईं, वे एक प्रकारसे पागलोंकी तरह हो गये।

(८)

उधर सुन्दरी कृष्णपक्षके चन्द्रमाकी तरह दिनपर दिन मलिन होने लगी ; स्वामीकी मङ्गलचिन्ता, संसारकी चिन्ता, अपनी चिन्ता, इहलोक और परलोककी चिन्ताओंने उसे धर दबाया ; वह जीती हुईही चिन्तारूपी चितामें रात दिन जलने लगी।

शोक पड़नेके कारण सुन्दरीका मिज़ाज भी कुछ ख़राब

हो गया ; स्वामीके आनेपर उनके साथ भली भाँति बातचीत भी नहीं करती। बातचीतही कम करती थी सो नहीं ; किन्तु उनके सामने भी बहुत कम जाती थी। एक दिन सन्ध्याके समय जगन्नाथ बाबू घरपर आये। उनके मुखपर विषादकी घनी छाया छाई हुई थी, उनकी हार्दिक अभिलाषा थी, सुन्दरीके साथ दो चार बातें करनेकी ; किन्तु घर आनेपर सुन्दरी उनसे कुछ भी नहीं बोली, उन्हें देखतेही दूरहीसे भागकर छिप जानेकी चेष्टा करने लगी। इतनेही में जगन्नाथ बाबूने सुन्दरीका हाथ पकड़ लिया और कहा, "मेरी प्यारी सुन्दरी! ज़रा ठहरो, मेरी एक-दो बातें सुनो। तुम मेरे साथ ऐसा क्यों करती हो ? मैंने तो कोई अपराध नहीं किया है—तुमसे भी कोई दुष्कर्म नहीं किया है, तुम्हें जितना काम पड़ता है—जितना माँगती हो, उतना द्रव्य देताही हूँ। तुम जो चाहती हो वही पाती हो, फिर मुझे कष्ट देनेका—मेरे साथ ऐसा कठोर व्यवहार करनेका कारण क्या है ?"

सुन्दरी—मैंने तो प्रतिज्ञा की थी कि तुमसे बोलूँगी नहीं ; किन्तु जब तुमने हाथ धरकर पूछा है तो कुछ कहनाही पड़ेगा—उत्तर देनाही होगा। मैं तुम्हारे रुपये-पैसेको नहीं चाहती, तुम्हारी धनदौलत नहीं चाहती, मैं केवल तुम्हें चाहती हूँ किन्तु जब तुम्हीं मेरे नहीं होते हो, जब तुम मेरी आँखोंके सामनेही एक नटिनकी लड़कीको बगीचेमें लेकर

उसके साथ ऐश-आराम करनेमें नहीं लज्जित होती हो, तो तुम्हारे साथ मैं बोलना नहीं चाहती। मेरी क़िस्मतमें जो लिखा है, वही होगा।

छिः छिः! सुन्दरी!! तू भला, यह क्या कहती है? अभी अनेक खेल बाकी हैं! स्वामीके साथ भला सम्बन्ध कैसे नहीं रह सकता है? तुम्हारे और तुम्हारे पतिके भाग्यसे पद्मनालके सूत्रकी तरह सम्बन्ध है! तुम्हारा अभाग्य है—यही कारण है कि तुम्हारा स्वामी एक दूसरीमें अनुरक्त है, इसका कोई समुचित प्रायश्चित्त करो, तुम्हारा अभाग्य दूर होगा, अवश्य दूर होगा।

(१०)

फिर इसके बाद उदास हो, एक दीर्घनिश्वास परित्याग कर, जगन्नाथ बाबू बगीचेकी ओर चले गये। तीन महीने तक अम्बालिकाकी साधना करने पर भी वे उसे पा न सके, इसी कारणसे सुन्दरीके आश्रयकी आशासे वहाँ पर गये थे; स्त्री होकर भी—सुन्दरीने उन्हें दूर कर दिया। अब अपनी ज्वाला दूर करनेके लिये—अपने हृदयकी मुराद पूरी करनेके लिये, जगन्नाथ बाबू अब फिर कहाँ जायँगे? धीरे-धीरे जगन्नाथ बाबू अब अपने उसी बगीचेकी ओर लौट गये। उस समय सन्ध्या हो चली थी, आकाशमें पूर्वकी ओरसे चन्द्रमा ऊपरकी ओर उठ रहे थे; गरमीका समय है, झरझर-झरझर करके हवा बह रही है, पुष्पके सौरभसे

दशों दिशाएँ सुरभित हो रही हैं। बेला, चमेली, जूही प्रभृति पुष्पोंकी कलिकाएँ औषधि-पति भगवान् चन्द्रदेवके शुभागमन पर चुटकियाँ दे-दे कर खिल रही हैं। इसी समय अम्बालिका फूलका हार, फूलही का वलय, फूलही का मुकुट पहन कर वनदेवी वनकर नाचती हुई उसी वाटिकामें घूम रही है, वेणीमें नवमल्लिकाका एक हार अपूर्व छटा छिटका रहा है; इस समय अम्बालिका सौन्दर्य्यका भूषण हो रही है। इसी समय भग्नहृदय जगन्नाथ बाबूने उदास मनसे वाटिकामें प्रवेश किया। ऊपर चन्द्रमाका प्रकाश, नीचे पुष्पोंकी निराली छटा, और इन्हीं दोनोंके बीचमें अपने सौन्दर्य्यके आलोकके साथ पुष्पका आलोक मिलाकर, चन्द्रमाके आलोकमें वह डूबती-उतराती फिरती है; आज जगन्नाथ बाबूका विषाद दूर हुआ,—नैराश्य दूर हुआ। जगन्नाथ बाबूने अपने मनमें विचार किया, पहले किसको देखूँ! ऊपर आकाश है, क्या आकाशके चन्द्रमाको देखूँ?—या अनेक प्रकारके पुष्पोंके गहने पहनी हुई, विकसित अरविन्दकी तरह मुखवाली किशोरी वनदेवीको देखूँ? जगन्नाथ बाबू विह्वल—विमूढ़ होगये, पागलोंकी तरह आगे बढ़ते हुए अम्बालिकाके सामने चले गये।

अम्बालिका अब भोली-भाली बालिका नहीं है, अब वह एक लज्जावती, गम्भीर स्वभाव की, पूर्ण युवती है; जगन्नाथ बाबू उसी वनदेवी की मूर्त्तिके सामने चले गये।

धीरे-धीरे उसके दोनों हाथोंको पकड़ कर बोले, "अम्बालिके! भला, इस प्रकारसे कितने दिनोंतक निभ सकता है? मैं अब अपनेको सम्हाल नहीं सकता; देह और मन दोनों शून्यसे होते चले जाते हैं; आँखें खोलने पर चारों ओर अन्धकारही अन्धकार देखता हूं, और आँखें मूँद लेने पर केवल तुम्हीको देखता हूँ। अब मुझसे सहा नहीं जाता,—मालूम होता है, अब मैं बहुत दिनोंतक नहीं बच सकता। तुम्हारे साथ मैंने जो उपकार किया है, तुम्हें मैंने जिस भावसे पोसा है, इससे मेरे साथ क्या तुम्हारा यह व्यवहार अच्छा लगता है? तुम मुझे दिन पर दिन गलाती जाती हो, क्या इस पर तुम्हें जरासा भी तरस नहीं आता? अच्छा, यदि ऐसाही मुझे दुःखही देना तुम्हें अच्छा मालुम होता हो तो दो, मैं तो अब सब सहनेको तैयार हूँ।"

अम्बालिका—बस, अब रहने दो, आगे अब अधिक बोलनेकी ज़रूरत नहीं है। हमलोगोंमें धर्म नहीं है, अधर्म भी नहीं है; पुण्य नहीं है, पाप भी नहीं है। हमलोग केवल, भलाई करनेवालों की भलाई को नहीं भूलतीं, उस ऋणको चुकानेके लिये हमलोग सर्वस्व—प्राणतक को भी कोई चीज नहीं समझतीं; तुमने अपने किये उपकार की बात कही है; मैं आजतक समझती थी, तुम्हारा यह उपकार निःस्वार्थ है। किन्तु, जब यह मालूम हो गया कि तुम इसका बदला भी चाहते हो, तो तुम्हारे इस ऋणका बदला अवश्य दूँगी।

किन्तु हां, तुमने मेरी बड़ी भलाई की है, इससे तुम्हें सचेत कर देना भी मुझे समुचित है—मेरे साथ रहनेसे—मुझे अपनानेसे, तुम्हारा मङ्गल कदापि नहीं होगा। यह बात मेरी संगिनीने तुम्हारी स्त्रीसे कही है, यह बात बहुतही सत्य है, यही कारण है कि इतने दिनोंतक तुम्हारी बात सुनी अनसुनी कर टालमटोल किया करती थी। अब तुम्हारे भाग्यमें चाहे जो हो, मैं अपना कर्त्तव्य पालन कर तुम्हारे उपकारका बदला अवश्य दूँगी। अपना सर्वस्व—तुम्हारा प्यारा—अपना रूप-यौवन तुम्हें न्योछावर करूँगी; मैं ऋणके बोझसे छुटकारा पाऊँगी। परन्तु समझ रखना, नटिन की लड़कियाँ बहुत दिनोंतक किसीकी होकर नहीं रहतीं; यह भी जान रखो, हमलोग तुमलोगों की तरह प्रेम करना भी नहीं जानतीं।

जगन्नाथ बाबू—इस समय अपनी मङ्गलकामनाके लिये कौन झखे? तुम्हारे न मिलनेसे मैं बच भी तो नहीं सकता।

अम्बालिका—तुम्हारी क़िस्मतमें जो होगा, वह होवेगाही, मैं भला करही क्या सकती हूँ; परन्तु यह सदैव स्मरण रखना—तुम्हारा भाग्यही तुम्हें विपद की ओर बलात्कारसे खींचे ले जाता है। तुम्हें विपद की ओर ले जानेमें, मैं अपनी ओरसे कोई यत्न नहीं करती। इस समय मैं अपनी उमरके द्वाराही, किसीके कुछ नहीं सिखाने पर भी, सब समझती हूँ; तुम्हारा मुखही देखनेसे मुझे सब मालूम हो जाता है।

परन्तु हाँ, मैं नटिन की लड़की होने पर भी, इस बातको भलीभाँतिसे मानती हूँ कि सती-साध्वी पतिव्रता स्त्रीका शोक-श्वास व्यर्थ नहीं जाता।

इन्हीं दो चार बातोंको कह अम्बालिका नीचे मुखकर चुपचाप बैठ गई। अब क्या, जगन्नाथ बाबूने आकाशका चन्दा हाथों पाया, पङ्गु होने पर भी पर्वतके लाँघने की सामर्थ्य पायी। अतीत, आगत एवं अनागत तीनों अवस्थाएँ उनकी आँखोंमें एक समान जँचीं। वे संसारको थोड़ी देरके लिये भूल गये!

(११)

क्या जगन्नाथ बाबू इस समय सुखी हैं? उनके मन की श्रद्धा तो अब मिट गई। उन्होंने तो अलभ्य को भी पा लिया। यदि ज्ञानरहित होनेसे, अपनेको भूल जानेसे भी लोग सुखी होते हों तो अवश्य उन्हें हम सुखी कहेंगे! किन्तु वे तो इस समय पागल हैं; भला, पागल को सुखी कैसे कहा जा सकता है? जगन्नाथ बाबू अम्बालिकाके रूपमें पागल हैं, अब पागलको सुखी करने की सामर्थ्य भला किसको है? जगन्नाथ बाबू अम्बालिकाके रूपसे भी पागल हैं, गुणसे भी पागल हैं, अम्बालिकाके भयसे भी पगले हैं—वे इस समय तीनों लोकको अम्बालिकामय देखते हैं। उपासक इष्टदेवी की जैसे उपासना करते हैं, जगन्नाथ बाबू इससे भी अधिक सेवा अम्बालिकाकी करते हैं। आजकल कचहरीका काम

नहीं होता, घरमें जाना-आना नहीं होता, मित्रमण्डलीसे पूर्ववत् मिलना-जुलना नहीं होता, पहलेकी तरह दोनोंका प्रतिपालन भी नहीं होता, होता है केवल अम्बालिकाके रूपका आराधन।

यद्यपि अम्बालिका को पाकर जगन्नाथ बाबू सर्वस्व भूल गये थे तथापि जगन्नाथ बाबूके उस प्रेमका—उस प्यारका—अम्बा-लिकाकी ओरसे कुछ बदला नहीं था। मधुर प्रेमसंभाषणका प्रत्युत्तर भी, अम्बालिका नहीं देती थी। वाटिकामें चारों ओर वह प्रायः घूमा करती थी। जगन्नाथ बाबू उसे सदैव खोजा करते थे, उसको एक क्षण भी न पानेपर उनको प्रलयके ऐसा मालुम होता था। लता-वितानकी हरित् वर्णकी प्रभाके बीच अम्बालिकाकी कनकलताकी तरह लावण्यप्रफुल्ला देहवल्लरी देख पानेसे, श्याम वृक्षपत्रके बीच हवासे उड़ायी हुई भ्रमरपंक्तिकी तरह केशदामका कम्पन देख पानेसे, जगन्नाथ बाबू दौड़कर पागलोंकी तरह उसके समीप जा बैठते थे, उसका हाथ पकड़ कर अत्यन्त आदरके साथ उसे घर लाते थे। वह भी चली आती थी, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु इच्छासे नहीं, अम्बालिकाका अनुराग-रक्तिम कपोलयुगल जगन्नाथ बाबूकी आँखोंको कभी भी देखनेका अवसर नहीं प्राप्त हुआ। अम्बालिका मरी हुईकी तरह अपनी निश्चल, निस्पन्द, भावशून्य देहलता उनके सामने रख छोड़ती थी। परन्तु अम्बालिकाका मन न जाने किस

एक अज्ञेय दूरदेशके लिये व्याकुल हो रहा था। कभी कभी उदासी भरी आँखोंसे आकाशकी चीण श्यामला रेखाको देख-देख कर दीर्घ निश्वास त्यागती थी। इस समय उसकी दृष्टिमें गौड़के जङ्गलका तो ध्यान नहीं आता था ?

धीरे-धीरे जगन्नाथ बाबू इन सब बातोंको समझते थे, परन्तु जानकर भी जानना नहीं चाहते थे। अम्बालिका भली भाँति या कुछ भी उनके साथ प्रेमालाप नहीं करती। अम्बालिका हमको छोड़कर अवश्य चली जायगी— इस बातको जानकर भी जगन्नाथ बाबू इसपर विश्वास नहीं करते हैं! अह! भला ये इस पर विश्वासही कैसे कर सकते हैं—अम्बालिकाही तो इनका जीवन है,—अम्बालिका-के लिये इन्होंने अपना सर्वस्व परित्याग किया है—तो क्या अम्बालिका इन्हें छोड़कर चली जायगी ? नहीं—नहीं—ऐसा भला क्योंकर हो सकता है ? इस प्रकार अनेक तरहके तर्क-वितर्क करने पर भी जगन्नाथ बाबू अपने मनको स्थिर नहीं कर सकते थे। उनका मन अन्धकार और प्रकाशमें पड़कर गोधूलिसे आच्छन्न प्रदोषकालकी तरह अपरिष्कार हो गया था। जगन्नाथ बाबू केवल सोचते थे, परन्तु सोचकर कुछ निश्चित नहीं कर सकते थे। वे कुछ भी ठीक तरहसे समझ नहीं सकते थे। रूप-विलासका प्रमोदमोह इस समय नष्ट होकर भी बचाही है। प्रार्थितकी प्राप्तिजनित चित्तकी स्थिरता अभीतक नहीं हुई है। जगन्नाथ बाबू अभीतक

प्यासेही हैं—अभीतक लालसा-वह्निकी चञ्चल जिह्वा उनके चित्त और बुद्धिको बीच-बीचमें झुलसा देती है। जगन्नाथ बाबू त्रिभुवनको भूल जाते हैं। हाय रे संसार-सुख! जग-न्नाथ बाबू अम्बालिकाको पाकर भी सुखी न हो सके!

(१२)

श्रावणका महीना है, आकाश सर्वदा मेघाच्छन्न रहता है, पृथ्वी सदैव सर्वत्र जलमयी रहती है, सदैव मूसलाधार वृष्टि होती रहती है; ग़ौर कर देखनेसे विदित होता है, मानो आकाश की देवमंडली संसारकी अधोगति देख-देख रो रही है,—इस रोदनमें तर्ज्जन-गर्ज्जन नहीं है, विद्युत्का भीषण विकाश नहीं है, सब स्तम्भित है; केवल झरझर करके वृष्टि हो रही है; घोर अन्धकार है, आकाशमें एक भी तारा नहीं, पृथ्वी पर भी कोई प्रकाश नहीं, गोदका आदमी भी पहचाना नहीं जाता; किन्तु इस समय भी अन्धकारमें रह-रह कर खद्योतोंकी चमक देख पड़ती है। बस, उसीसे तमिस्रा की गम्भीरता, और अनन्त आकाशके काले वर्णकी प्रगाढ़ता देख पड़ती है। वर्षाकी अन्धकारमयी रजनीमें वे पिट् पिट् कर बल रहे हैं—पीपल वृक्षके शिखरपर, कदलीके पेड़ और पत्तोंपर, आम्रकी शाखाओंपर, लता-कुञ्जमें पिट्-पिट् कर बल रहे हैं और सजल तथा गाढ़े अन्धकार की प्रगाढ़ता दिखाये देते हैं। ज्ञात होता है, हाथ फैलाकर

मुट्ठी बाँधने पर केवल अन्धकारही मुट्ठीमें बँध जायगा। इसी समय जगन्नाथ बाबू बगीचे वाले मकानके बरामदेमें बैठे हैं, बाहरी अन्धकारके साथ अपने अन्धकारमय मनको मिलाकर अन्धकार-पिण्डकी तरह बैठे हैं। बाहरी खद्योत-दीप्तिकी तरह अन्धकारमय मनमें भी कभी कभी विवेक-दीप्ति बल उठती है। उसी अन्धकारमें, उसी दीप्तिकी सहायतासे कभी कभी प्रेतपुरीकी छाया की तरह सुन्दरीका मलिन मुख, अन्धकार-पिण्डकी तरह परिज्ञात हो आता था—यद्यपि स्पष्ट देख नहीं पड़ता था, किन्तु मनमें आता था; यह अन्धकारावगुण्ठित मन और किसीका नहीं—सुन्दरीका है। जगन्नाथ बाबू देखते थे, छायाकी तरह रूप भी देखते थे, देखकर विह्वल-विमूढ़ होजाते थे। प्रत्येक क्षण वह भयङ्कर मोह घने अन्धकारकी धारा बहाकर, जगन्नाथ बाबूके मनको परिप्लावित कर देता था। इसी समय मानों अन्धकारको चीर कर उसीमेंसे अम्बालिका निकल पड़ी। अम्बालिकाका अपूर्व वेश है, शरीरमें भींगा कपड़ा है, वस्त्रके आँचलसे टप् टप् कर जल गिर रहा है, आजानुपरिलम्बित केशराशिसे भी टप् टप् कर जल गिर रहा है और उसी केश-राशि पर खद्योतमण्डली भी मालाकी तरह बैठी हुई है; यह खद्योतोंकी माला टप् टप् कर बल रही है, मानों अनेक मणिमाणिक्यकी द्युति झर रही है। अम्बालिका नटिनकी लड़की है—जंगली है, अतः उसके सदृश फूल, फल, और

लतासे शृंगार-पटार करना और दूसरा कोई नहीं जान सकता है।

अम्बालिका—बाबू साहब! मैं आपके यहाँ विदा मांगनेके लिये आयी हूँ, मेरा समय पूरा हो गया है, मैं अब अधिक यहाँ पर ठहर नहीं सकती, अपना ऋण मैं अदा कर चुकी।

जगन्नाथ बाबू—यह क्या अम्बालिके! तुम यह क्या कहती हो! तुम भला क्यों जाती हो? तुम मेरा सर्वस्व हो, तुम्हारे जाने पर मैं कदापि नहीं जी सकता! ऐसी-ऐसी बातें कह कर दिल्लगी मत करो—मुझे जलाओ मत।

अम्बालिका—मैं तो दिल्लगी-तमाशा करना जानती नहीं। आप तो मेरे प्रेमसे मुझे मिले नहीं हैं, आपने तो मुझे प्रेम करना सिखलायाही नहीं; आप तो मेरा उपकार करनेवाले हैं, उसी उपकारका ऋण चुकानेके लिये आपने मुझसे प्रार्थना की थी, उसी प्रार्थनाको मैंने स्वीकार किया था। मैं इस समय गर्भवती हूँ, इस समय अब आपका मुझपर कोई अधिकार नहीं; आपके गृहमें, आपके आश्रयमें मैं सन्तान उत्पन्न तो कर नहीं सकती। हम लोगोंका यह जातीय नियम है—आपके आश्रयमें आपहीकी औरस सन्तान उत्पन्न होनेपर वह यावज्जीवन आपकी दासी होकर रहेगी—मैं यह अपनी आँखों देख नहीं सकती। गौड़के जंगलके

एक गुप्त स्थानमें हम लोगोंका एक अड्डा है, मैं अब वहीं पर रहूँगी।

जगन्नाथ बाबू-नहीं, नहीं, अम्बालिके! ऐसी बात अपने मुँहसे मत निकालो। फिर यदि तुम इस प्रकारकी कठोर बात—नीरस बात—कहोगी तो अवश्य मुझपर यह आकाश गिर पड़ेगा—मैं मर जाऊँगा।

अम्बालिका—बाबू साहब! सुनिये मैं भी एक लब्धप्रतिष्ठ आपही की जाति की लड़की हूँ। मेरी माँ नटिन थी। एक बाबूने मालदहके जंगलमें शिकार खेलनेके लिये आकर मेरी माँ का सर्वनाश किया। उसीसे मेरी पैदाइश हुई। मेरी क़िस्मतमें भी वही बात लिखी थी—मेरी क़िस्मतमें भी आपकी सेवा करनी लिखी थी। अब मेरा नसीब फल चुका—मेरे ग्रहकी शान्ति हो गई। मुझे गर्भ रह गया; अब मैं ठहर नहीं सकती, मैं दासी होकर ठहर नहीं सकती। मैं अपने बच्चेको दासीका बच्चा अपनी जिन्दगीमें हर्गिज़ नहीं बना सकती! बाबू साहब! सलाम।

जगन्नाथ बाबू—यह क्या अम्बालिके! यह कभी हो नहीं सकता. मैंने तुम्हारे सामने अनेक अपराध किये हैं, मेरे उन सभी अपराधोंको क्षमा करो। मेरे यहाँ रहो, मैं तुम्हें अपने सम्पूर्ण धनकी ईश्वरी बना कर रखूँगा। मैंही तुम्हारा ग़ुलाम होकर रहूँगा। तुम भला, मेरी दासी होकर कैसे रहोगी? मेरे सरकी क़सम, तुम जाओ मत। इस समय

जैसा अन्धकार बाहरमें देख सकते हो, वैसाही अन्धकार मेरे हृदयमें भी वर्त्तमान है, केवल तुम्हीं इन दोनों अन्धकारोंको दूर करनेवाला प्रकाश हो—तुम जाओ मत। तुम्हारे आँखोंकी ओट होतेही मैं मर जाऊँगा।

इसके बाद समीपही से अन्धकारका भेद कर उत्तर आया—"तुम मरोगे नहीं पागल होगे, मरोगे नहीं, पागल होगे; मैं अब चली।" उद्भ्रान्त, उन्मत्त जगन्नाथ बाबू, "कहां चली?" कहकर ज़ोरसे चिल्ला उठे, और जिधरसे वह उत्तर आया था, उसीको लक्ष्य कर, उसी ओर चल पड़े। उस सूचीभेद्य अन्धकारका और गाढ़ करके श्रावणकी मूसलाधार वृष्टि होने लगी, अगणित बेंग इस मूसलाधार वृष्टिसे प्रसन्न होकर चारों ओरसे बोलते हुए मानो जगन्नाथ बाबूकी हँसी उड़ाने लगे और उसी शब्द-राशिके साथ जगन्नाथका आर्त्तस्वर अतीतके अनन्तमें मिल गया!

(१२)

प्रभात हो गया, वर्षाकालका प्रभात है। इस प्रभात में कोई शोभा नहीं, केवल निशाकालका घना अन्धकार ज़रासा दूर होगया है—और वही वृष्टि, वही मेघ, सब ज्योंका त्यों वर्त्तमान है। यद्यपि सूर्य्यकी प्रभा है, किन्तु किरण नहीं है, पत्तियोंपर थिरकती हुई वह स्वर्णकी प्रतिमा नहीं है, पक्षियोंका कलरव नहीं है, जीवजन्तु का चित्कार

नहीं है, मनुष्योंका कोलाहल नहीं है ;—है केवल पक्षियोंके पत्र झाड़नेका शब्द, एवं वर्षा-वारि-प्रवाहके ऊपर घरके पाले-पोसे पशु और लड़कोंके चलनेसे झप झप् थप् थप् शब्द।

वह क्या है, वह! उस पुराने मकानके सामने, उस दरवाज़ेके नज़दीक, वह क्या है! क्या वह मनुष्यका मुर्दा है, या जलधारामें बहे हुए खर-पोआल या चोथड़ोंसे समेटी हुई, ढँकी हुई आदमीकी देह है! ज़रा आगे बढ़कर देखो, यह क्या है! यह तो जगन्नाथ बाबूका मकान है, उसी मकान की इस समय ऐसी दशा हुई है। जिस मकानमें बारहों महीने पूजा-पाठ एवं ब्राह्मण-भोजन हुआ करता था, वह मकान इस समय जनशून्य है।

धीरे-धीरे एक बूढ़ी बाहरके दरवाज़ेके किवाड़ खोलतेही, मुर्देकी तरह निश्चल, निस्पन्द एक मनुष्यकी देह देखकर "बेटी! इधर आ" कहकर चिल्ला उठी। उसकी चिल्लाहटको सुनकर उसी वर्षामें भींगती हुई एक दुबली-पतली युवती बाहर आयी, उसने भी सामने उस देहको देखा। वह रोई नहीं—देखकर धीरे-धीरे वहाँ चली:गई। उसने उस देहको भली भाँति देखकर कहा—"मौसीजी! क्या देखती नहीं हो कि ये कौन हैं?" बूढ़ी मौसी दुःखिनी सुन्दरीकी यह बात सुनकर छातीपर पत्थर रख धीरे-धीरे आगे बढ़ी। वृद्धाको आँखोंसे भली भाँति देख नहीं पड़ता था, हाथसे

उस देहको छूतेही आश्चर्यसे बोल उठी, "यह क्या? यह तो मेरा जागू है!" कहकर फिर, "हायरी किस्मत! हायरे जागू! तू कहाँ गया?" इत्यादि कहकर रोने लगी।

वास्तवमें जगन्नाथ बाबू मूर्च्छित अवस्थामेंही यहाँ पड़े थे। किस प्रकार वे यहाँपर आये, इसको वे भी नहीं जानते थे और दूसरा भी कोई नहीं जानता था। विचारनेसे मालूम होता है कि वे निकले थे अम्बालिकाको खोजमें, परन्तु उसको खोजते-खोजते अन्धकारमय हृदयमें जो विवेक-दीप्ति बल उठती थी उसीके द्वारा सुन्दरीको सुख-छाया देखकर विह्वलभावसे दौड़कर सुन्दरीके वासस्थानके सामने मूर्च्छित होकर गिर पड़े हैं! इसे हम प्रणयका नशा कहेंगे, न कि सौन्दर्यका। उसी वृद्धाके रोनेसे गाँव-पड़ोसकी सभी स्त्रियाँ आकर इकट्ठी हुईं। मूर्च्छित जगन्नाथ बाबू भी देह झाड़कर उठ बैठे। इस समय सुन्दरीके माथेपर घूँघट नहीं, किसीको देख वह लजाती नहीं, सुन्दरीने वाह्यज्ञानसे रहित होकर, हँसकर, अपने पतिका हाथ पकड़ लिया। जगन्नाथ बाबू छोटे बच्चोंकी तरह उसके हाथ पकड़तेही घरकी ओर उसके पीछे पीछे चल पडे।

"हाँ, हाँ, तुम कौन हो? क्या तुम अम्बालिका हो? मै तुम्हारे साथ बनमें नहीं जाऊँगा।" जगन्नाथ बाबू सचमुच पगले हो गये हैं। एकदम उन्माद! किन्तु स्वामीको इस अवस्थामें भी पाकर सुन्दरी सुखी है। वह सुखी हो क्यों

नहीं?—उसने तो अपने सर्वस्वकोही—स्वामीकोही—पा लिया है। उन्मादग्रस्त स्वामीकी जली-कटी बातें सुन्दरी हँसीसे सह लेती है और उनकी सेवा करती है। जगन्नाथ बाबू अपनी उस बेहोशीकी अवस्थामें सुन्दरीको बहुत दिक़ किया करते हैं तथापि सुन्दरी उन्हें जञ्जीरमें नहीं बाँधती है। वह कहा करती है—"मेरे स्वामी मेरे देवता हैं, मेरे इस जन्मके सर्वस्व हैं, परलोकके आधार हैं, मैं उसी स्वामीकी पदसेवा करना चाहती हूँ और कुछ नहीं चाहती। मैं बड़ी भाग्यहीना हूँ, उस जन्ममें अत्यन्त घोर पाप किया है, यही कारण है कि ऐसा स्वामी पाकर भी मैंने उन्हें त्याग दिया था, अपने खोये हुए धनको खोकर मैंने पाया, यही मेरे लिये यथेष्ट है। परन्तु मेरे इन्द्र-तुल्य स्वामी पागल हो गये हैं, यही तो मेरी बदक़िस्मती है।"

जगन्नाथ बाबूकी उन्मत्तताकी ख़बर बातकी बातमें शहर-भरमें फैल गई। कोई कहता,—"नटिनकी लड़की अम्बालिका गुण करके बच्चेको पागल बना गई है।" कोई कहता, "नहीं, नहीं, वह जो मेलेमें अम्बालिकाके आनेके बाद आकर १०) रुपये उसकी क़ीमत ले गई थी, उसीने बुद्धि मार दी है।" मजिष्ट्रेट राबिन्सन साहबके कानों तक यह ख़बर पहुँची। ख़बर पातेही आप सीधे जगन्नाथ बाबूके मकान पर चले आये। उनके आनेकी सूचना पा दूसरे-दूसरे लोग धर-बाँधकर किसी प्रकारसे उन्हें साहबके सामने ले आये।

जगन्नाथ बाबू साहबको देखकर केवल रोने लगे। एक तो पागलका भक्की मिज़ाज, इसपरसे रोना आरम्भ हुआ, अब जगन्नाथ बाबूके रोनेका तारही नहीं टूटता था। साहबने जगन्नाथ बाबूका हाथ पकड़ कर मीठी बातोंमें कहा,—"बाबू! तुम रोता क्यों है? तुम्हारी नौकरी तो अभी तक रक्खी हुईही है, तुम आराम होतेही नौकरी करोगे! भय कैसा? मैं जबतक इस संसारमें जीवित रहूँगा, तबतक तुम्हें किसी बातकी चिन्ता नहीं है।"

जगन्नाथ बाबू अभीतक रोतेही थे, परन्तु साहबके मुखकी मीठी बातें सुनकर कुछ देरके बाद बोले :—

"साहब! मेरा क्या हुआ? मेरी अम्बालिका कहाँ गई? मेरी सुन्दरी रोती क्यों है? मैं क्या खाऊँगा?"

पागलोंकी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, इसी प्रकारसे असम्बद्ध प्रलाप बकने लगे। साहब बहुत देरतक चुपचाप बैठकर पागलकी बात सुनने लगे। अन्तमें आनेके समय सुन्दरीको लक्ष्यकर साहबने कहा,—"तुम किसी बातकी चिन्ता मत करो, जब पागल बोलता है, तब उससे उसके हृदयकी अवस्था मालूम होती है, अब इसका रोग अवश्य छूट जायगा। खर्चके लिये जितनेकी ज़रूरत हो, मेरे यहाँसे मँगा लेना। तुम घबड़ाना मत।"

(१४)

भाद्रका महीना है। सूर्य्य अपनी प्रखर किरणसे संसारको

जला रहे हैं। दोपहरका समय है। सभी अपने-अपने कामोंसे निपट आराम कर रहे हैं।

"मां, दो दाने भिखादो।" अकस्मात् उस दोपहर की निस्तब्धता को भेद कर यह शब्द जगन्नाथ बाबूकी मौसीके कानोंमें पड़ा! एक-ब-एक एक प्रौढ़ा सामने आती हुई देख पड़ी। आतेही हँसकर उसने उनसे कहा—"बूढ़ी मां! बहूजी कहाँ हैं?" इतनेमें आवाज सुनकर सुन्दरी भी भीतरसे चली आयी। वह इस भिखारिनी को देखतेही काँप उठी, और शीघ्रही पहचान भी गई कि यही वह कटाहगोलाके मेलेवाली प्रौढ़ा है! अब वह बैठ कर सुन्दरीसे बोली, "रोती क्यों हो? बहूजी! तुम्हें मैं बहुत प्यार करती हूँ, तुम्हारा स्वभाव मुझे बड़ाही अच्छा लगता है। इससे मेरे जीते-जी तुम कदापि नहीं दुःख पाओगी।" नटिनकी इस बोली का सुनकर जगन्नाथ बाबू घरमें से बाघकी तरह कूद कर बाहर चले आये; आतेही अपने दोनों हाथोंसे उसके माथेके बालोंको पकड़ कर बोले,—'दो बूढ़ी! मेरी अम्बालिका को लाओ, दो।" वह बूढ़ी नटिन एक बार जगन्नाथ बाबूकी ओर स्थिर दृष्टिसे देखकर बोली, "यहीं पर चुपचाप बैठो।" उस बूढ़ीकी इस बातको सुनतेही जगन्नाथ बाबू घरके एक कोनेमें बिल्लीकी तरह बैठ गये। उसके इस प्रभावको देखकर सब अचम्भित हो गये।

उसने फिर कहा,—"बहूजी! अब तुम दुःख क्यों भोगती

हो ? जो अमावस्या आगे आती है, उसी दिन अपने स्वामीका हाथ पकड़कर शाह-साहिबकी दरगाहपर जाओ, तुम्हारे स्वामीकी तबियत अच्छी हो जायगी। देखो, तुम्हारे स्वामीने उस समय मेरी बात न मानी, उसीका यह नतीजा है। अम्बालिकाको भी न रख सके, आप भी अच्छी तरहसे न रह सके। हमलोगोंकी जाति ठीक साँपोंकी तरह है, हमें जितना ही दूध पिलाओगे, उतना ही अधिक विष पैदा होगा। अपने उस्तादकी आज्ञासे इस बातको कहनेके लिये मैं यहाँ आई हूँ।" यही इतना कहकर वह वहाँसे चली गई।

(१५)

शाह-साहिबकी दरगाह पर जानेका समाचार पाकर राबिन्सन साहबने अपना हाथी ठीक कर दिया, दो-चार आदमियोंको साथ भेज दिया, यथेष्ट अर्थ भी सुन्दरीके यहाँ भिजवा दिया।

सन्ध्या हो गई है, सुन्दरी दो-चार मनुष्योंके साथ गौड़के जङ्गलमें शाह-साहब की दरगाहके समीप आ पहुँची है। चारों ओर घना बन है, बनमें हुसेन साहबकी बनवायी हुई एक मसजिद है। उसी मसजिदके पार्श्वमें, एक गुफामें, वृद्ध मुसलमान शाह-साहब रहते हैं। उस निर्जन भयङ्कर बनमें उन्हें न जाने कहाँसे खाना पहुँचता है। सुन्दरी, वहाँसे बहुत दूर परही हाथीसे उतर कर, सब लोगोंको वहाँ-ही छोड़ स्वामीका हाथ धर कर अकेलीही वहाँ गई। उसी

समय बड़ी-बड़ी लम्बी दाढ़ी तथा बड़ी-बड़ी जटावाले मुसलमान फ़कीर शाह-साहब वहाँ देख पड़े। फ़कीरने आतेही जगन्नाथ बाबूके माथे पर हाथ फेर कर कहा—"नीच ! आराम होजा।" उस बातके सुनतेही सचमुच जगन्नाथ बाबूको बहुत-कुछ होश हो आया। वह सुन्दरीसे बोले, "सुन्दरी, यह सामने कौन है ? मैं इस समय कहाँ हूँ ?" ठीक इसी समय उस गम्भीर वनमें किसीने गाया —"जनम अवधि हम रूप निहारिनु नयन ना तिरपित भेल।" गीतको सुनतेही जगन्नाथ बाबू काँप उठे और बोले, "ठीकही तो है। जबतक हो सका, अपनी आँखोंसे रूप देखा ; जब ज्ञानरहित हुआ, तब मन-ही-मन कभी-कभी उस रूपका ध्यान करता था, तथापि आशा नहीं मिटती थी। सुन्दरी ! आज तुम्हीको सुन्दरी देख रहा हूँ। चलो, घर चलो। मेरी हृद्गत रूप-वह्नि भयङ्कर प्रज्वलित अग्निकी तरह बहुत दिनसे रातदिन जल रही है, आज तुम्हारे स्नेहके शीतल वारिके सेवनसे उस अग्नि-ज्वालाको बुझानेकी चेष्टा करूँगा। जबतक देह रहेगी, तबतक रूपकी क्षुधा रहेगी अवश्य, किन्तु मैं अब उस क्षुधाकी ज्वालासे दूसरेके द्वारपर कदापि नहीं जाऊँगा। जो इस संसारमें सबसे बढ़ कर रूपवान् हैं, उन्हींकी छाया पाकर तुम रूपवती हो, इससे तुम्हें देखकर मेघदर्शन-पिपासु चातककी तरह ज्ञानशून्य हो अनन्त-शून्यमें उड़ जाऊँगा। मैंने पशुको सुन्दर देखा था, इसीसे पागल हुआ था। तुम्हें रूप

है—गगनोपान्त-निमग्न सूर्य्यरश्मि-प्रतिभात ऊषाकी तरह तुम्हारा सुस्निग्ध सुमधुर सुशीतल रूप है। मैं रूपकी ज्वालासे झुलस गया हूं, उसी रूपके शत-क्षतको तुम्हारे रूपकी कौमुदीमें स्नान करा शीतल करूंगा। जो होनेवाला था, सो तो होही गया, चलो अब घर चलें। मेरी ज्ञानकी आँखें खुल गईं; अब मैं सब समझने लगा, अब मेरा-जीवन सार्थक हुआ, फ़कीर! सलाम।"

मालती।

(१)

आज सूर्य्यग्रहण है। ऐसा ग्रहण इसके पहले कभी नहीं लगा था। ज्योतिष जाननेवालोंका भी कहना है कि सौ वर्षके भीतर ऐसा ग्रहण कभी नहीं लगा। यही कारण है कि, कलकत्तेके अहीरीटोलेके घाटपर स्नान करनेवालोंकी बड़ी भीड़ है। गङ्गामें खड़े हो कर किनारेकी ओर देखनेसे ज्ञात होता है मानों ऊपरका नीला आकाश राहुके डरसे डरकर गङ्गामें छिपना चाहता है। जिधर आँख जाती है उधर मुण्डही मुण्ड नज़र पड़ते हैं। ऊपरसे लेकर नीचेकी सीढ़ीतक, पिपीलिकाकी तरह नरमुण्ड-श्रेणी देख पड़ रही है। एक स्थानपर, एक समयपर, एक सङ्ग, असंख्य पुरुष-स्त्रियोंकी पाप-नाश और पुण्य-सञ्चयकी स्पृहा—परलोकमें सद्गति पानेकी लालसा—हृदयमें एक अननुभूतपूर्व आश्चर्यकी गम्भीरता उत्पन्न कर देती है।

शङ्ख-घण्टे बज उठे, सभी ग्रहण देखनेके लिये ऊपरकी ओर आँखें फाड़-फाड़ कर ताकने लगे। कोई कहता है,

हुआ है; उसका मुख देखनेसे ज्ञात होता है, मानों स्नान करनेका उसे आग्रह भी नहीं, उत्कण्ठा भी नहीं, गङ्गास्नान करनेसे जो दुर्लभ पुण्य होता है, उसकी लालसा भी नहीं। दाहिने कन्धेपर गमछा रखा हुआ है और युवक उदासी-भरी आँखोंसे चारों तरफ़ देख रहा है; इतनी भीड़, इस प्रकारकी ठेलाठेली, इस प्रकारका गगनभेदी जनरव—परन्तु युवकका ध्यान इनमेंसे किसी ओर नहीं! सूर्य्यके आधेसे अधिक हिस्सेको राहुने कवलित कर लिया! आकाशमें दूर-दूरपर एक-एक तारा देख पड़ता है, सूर्य्यकी किरणें इस समय पीले रंगकी हो गई हैं! वृक्षोंकी छाया अत्यन्त सघन कृष्ण वर्णकी हो गई है। पक्षिकुल इस अपूर्व व्यापारको देखकर डरसे केवल चीत्कार कर रहे हैं। धीर, दक्षिण पवनमें वह उष्णता नहीं, इस समय शरीरमें लगतेही वह कण्टकित कर देता है। परन्तु युवकके हृदयमें इनमेंसे किसीकी अनुभूति भी नहीं है!

युवक घाटके एक स्थान पर चुपचाप बैठा है। एक प्रकारसे इसे वाह्य-ज्ञानशून्य कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। इसी बीचमें हठात् आकर कोई इसकी देह पर गिर पड़ा। गिरतेही उसने युवकी कमर पकड़ ली! एक-ब-एक युवक की देहपर गिरनेसे मालूम हुआ कि जहाँपर बैठा है वहाँसे यह भी गिरा। परन्तु पीछेसे सम्हलते सम्हलते सम्हल गया। सम्हलकर अपनी पूरी ताक़तसे उसने उस अपरिचित व्यक्तिकी

बाँह पकड़ ली और पीछे फिरकर कहा,—"छिः! इस तरहसे देहपर गिरा जाता है? देखो यहाँपर नीचे कङ्कड़-पत्थर हैं, यदि मैं आज गिर पड़ता तो कितनी चोट लगती?" उस अपरिचित व्यक्तिने कहा,—"महाशय! क्षमा कीजिये, मुझे भी ठहरनेकी जगह नहीं थी, इसी बीचमें उधरसे किसीने धक्का दे दिया।" इस बातके सुनतेही युवकने उस अपरिचित व्यक्तिके मुखकी ओर दृष्टि दौड़ायी। उस समय सूर्य्य प्रायः राहु-कवलित हो गये थे, सूर्य्यका एक खण्ड किसी प्रकारसे राहुके मुखसे बच गया था; उसी अल्प प्रकाशके द्वारा युवकने उसे देखा, देखनेसे ज्ञात हुआ यह किसी स्त्रीका मुख है।

युवकने उसे देखा, उसने भी अपनी आँखोंमें युवकका फाँसा लेनेका उपक्रम किया! युवकने पूछा,—"अच्छा, अब आप क्या चाहती हैं?"

रमणी कुछ अप्रतिभ होकर, लज्जासे अपनी दोनों आँखों को अपने वक्षःस्थलकी ओर झुका बोली—"और कुछ नहीं, मुझे ठहरनेकी जगह नहीं मिलती, इसीसे मैं इधर-उधर मारी फिरती हूँ। एक मेरी माँ थी, वह भी इसी भीड़में न जाने किधर चली गयी। आप अपने मनमें कुछ बुरा ख्याल न करें, कृपाकर थोड़ी देर यहाँ ठहरने दें।" युवक बोला;—"इस भयानक भीड़में स्थिर होकर ठहरना तो बड़ा कठिन है, यदि आपकी राय हो, तो मैं दूसरी अच्छी जगह पर

आपको ले चलूँ।" युवतीने कहा,—"बड़ी कृपा होगी। मुझे इस समय बड़ी गर्मी मालूम पड़ती है, यदि किसी खुले स्थानपर चलें, तो मेरी प्राणरक्षा भी हो। परन्तु भीड़ तो खासी है, इसमें होकर क्या आप बाहर निकल सकते हैं?" युवकने रूखे भावसे कहा,—"चलो, देखा जायगा।"

हठात् इसी समय चारों ओर अन्धकार हो गया। अन्धकार होतेही कोलाहल और बढ़ गया। कुछ देरके लिये ज्ञात हुआ मानो सुचतुर नट, विश्वनियन्ताने अपनी नाट्य-लीलाकी समाप्ति कर काली यवनिका आकाशसे धरातल तक गिरा दी हो।

थोड़ीही देरके बाद चन्द्रकलाकी तरह सूर्य्यका एक अंश देख पड़ा, चारों ओर प्रकाश फैल गया। स्तब्ध प्रकृति सजीव हो उठी। पशुपक्षी सभी बोल उठे। स्तब्ध मनुष्यगण मानो एक तानसे, एक कण्ठसे, हरिनाम उच्चारण करने लगे। इसी समय युवकने कहा,—"चलो अब ऊपर चलें।" रमणीने कहा,—"क्या बिना स्नान किये ही ऊपर चलोगे?" इस भीड़में किसको कौन पूछता है? यहाँपर इस समय लज्जा-सम्भ्रम नहीं। रमणी अपने हाथसे युवकका हाथ पकड़कर गङ्गा-जलमें ले गई और बोली,—"आप अपनी धोतीमें मेरी साड़ीका छोर बाँध दें, नहीं तो यदि कहीं मेरे पैर फिसले तो मैं डूब हो जाऊंगी।" युवकने पहलेकी तरह रूखे भावसे कहा,—"अच्छा।" रमणीने अपनी साड़ीका छोर उसकी

धोतीके छोरसे बाँध दी। दोनोंने एक साथही स्नान किया। देव-वन्दना भी एकत्रही हुई। इस समय सूर्य्यकी बड़ी तीच्ण किरणें हैं, सभी उस उष्णतासे झुलस रहे हैं। अब किसीकी हिम्मत गङ्गामें खड़े रहनेकी नहीं पड़ती। सभी धीरे-धीरे ऊपर उठ रहे हैं। इसी समय रमणीने भी युवकसे कहा—"बड़ी कड़ी धूप है, चलो ऊपर चलें।" धीरे-धीरे ये दोनों भी जलमेंसे ऊपर उठे।

स्त्रीका महीन भींगा कपड़ा देहमें चिपककर देहकेही रङ्गका हो गया है। केशदामसे निकलता हुआ विन्दु-विन्दु जलकण सूर्य्यकिरणसे निकले हुए कनक-विन्दुकी तरह—कपालपर, भौंपर, नासाग्रपर और चिबुकके पार्श्वमें मानों झूल रहे हैं, हिल रहे हैं, खेल रहे हैं और चल रहे हैं। आँखकी पलकके ऊपर सूक्ष्म-सूक्ष्म जलकण प्रथम-ऊषा-राग-रञ्जित शिशिर-किरणकी तरह शोभित हो रहे हैं। इस समय उस युवतीका मुख लज्जा, सम्भ्रम, उत्कण्ठा एवं उद्वेगसे सद्यः-प्रस्फुटित कमलकी तरह चञ्चल है। अनुपमेय शारीरिक लावण्य-प्रभा है। प्रथम यौवनोद्गमकी ऐश्वर्य्यप्रभासे सर्वाङ्गमें एक प्रकारकी अलौकिक ज्योति फूट-फूट कर निकल रही है। इस प्रकारसे, इस अवस्थामें, एवं इस भावसे, युवकने कभी स्त्रीमुख नहीं देखा है। आजानुपरिलम्बित केशदाम पीठकी चारों ओर पड़ा हुआ है। राहुग्रासकी तरह और चन्द्र-छायाकी तरह, सिक्त केशपाश, प्रथम यौवनकी अपूर्व दीप्तिकी

मानो बाँध रखनेकी चेष्टा कर रहा है। और उसी केशराशिकी आड़से, ग्रीवा-गठन-सौन्दर्य्य, पीठका वर्णगौरव, कटितटकी लावण्यच्छटा, युवक प्रतिक्षण देख रहा है। हंसकी तरह गर्दन फेरकर, युवकको नयनवाणसे मारती हुई युवतीने कहा—"इस प्रकारसे खड़े क्यों हो? आओ, चलें हमलोग ऊपर चलें।" युवकने कुछ लज्जित होकर कहा,—"चलो!" धीरे-धीरे दोनों ऊपर चले। ऊपर आकर युवकने एक भाड़ा-गाड़ीवालेको बुलाया। इस समय युवती बोली—"मेरे पास दूसरा कपड़ा नहीं है, भींगीही साड़ीसे घर जाऊँगी। आपके पास भी तो दूसरा कपड़ा नहीं देखती, शायद आपको भी भींगेही कपड़ोंसे चलना होगा। आप कृपाकर मेरे घर पर चलें, वहाँ जैसी सलाह होगी वैसा किया जायगा।" इसी बीचमें गाड़ीवान भी समीप आकर बोला, "बाबू! कहाँ जाना होगा?" युवकने इस बार युवतीके मुखकी ओर उत्कण्ठा-भरी आँखोंसे देखा। युवती युवकके मनोभावको ताड़ गई और एक दिल्लगीकी हँसी हँसकर बोली—"यहीं, पासही शोभाबाज़ारमें।"

(२)

"यह क्यारे! यह किसको लायी?"

उत्तर—"जिसको लाना चाहिये, उसेही लायी हूँ।"

शोभाबाज़ारकी एक गलीके भीतर एक मकानके आँगनमें एक बूढ़ी स्त्रीके साथ हमलोगोंकी पूर्वपरिचिता रमणी—युवती-

को इस प्रकारसे बातचीत हुई। वह वृद्धा उस युवतीको मालूम आनीया है—शायद माताही हो तो आश्चर्य नहीं, युवती भी उसे माताही कहती है। वृद्धा भी उससे माताकी तरह-ही स्नेह रखती है।

घरके भीतर प्रवेश करतेही युवकके हृदयमें एक प्रकारके खटकेका शब्द हुआ। उसने सोचा, "यह क्या, यह मुझे कहाँ लायी? यह किसका मकान है?"

युवती बोली—"माँ, मुझे एक सूखा कपड़ा दो, इन्हें भी दो। हम दोनों, बहुत देरसे भींगे वस्त्र पहने हुए हैं।"

वृद्धाने चुपचाप दो कपड़े लाकर दोनोंको दे दिये, दोनों भिन्न-भिन्न स्थानोंपर जाकर अपना-अपना आर्द्र वस्त्र बदल कर एक जगह पर आकर बैठ गये। वृद्धाने बिना कुछ कहे-ही, दोनोंको कलेऊ करनेके लिये दो तश्तरियोंमें ला दिया। युवती अपना भोजनपात्र लेकर दूसरे घरमें चली गयी। युवक, अकेला बैठा रहा। कुछ देरके बाद युवती पान चबाती हुई उसी घरमें आयी। भोजन ज्योंका त्यों रखा देख आश्चर्यसे बोली—"यह क्या! आपने अभीतक कलेऊ नहीं किया?"

"हाँ, हाँ, मैं भूल गया था, अभी करता हूँ।"

"वाह, क्या भूलना है! जब आप कलेऊ करनाही भूल जाते हैं, तब जिससे प्रेम करेंगे, उसे कैसे स्मरण रखेंगे?" उस स्त्रीने हँसकर कहा। इसके बाद यह खाइये, वह खाइये,

कहती हुई युवकको कलेऊ कराने लगी। युवक भी मीठी-मीठी बातोंमें भूल सारी थालीके मिष्टान्न खा गया। कलेऊ ख़तम होने पर युवतीने युवकको लक्ष्यकर आग्रहके साथ कहा—"रात होती है, आज अभीतक आपने भोजन नहीं किया है। आप आज रह जायँ, सन्ध्याके समय यहीं भोजन करें।"

"नहीं, नहीं, मुझे अभी जाना होगा, मेरे लिये, मेरी माँ राह देखती होगी।" यह कहकर युवक उस मकानसे बाहर हुआ। युवती भी धीरे-धीरे साथही साथ कुछ दूरतक आयी। उसने एक विचित्र भाव-भङ्गीसे युवककी ओर देखा—दोनों, दोनोंको कुछ देरतक देखते रहे। युवतीने अत्यन्त धीरे-धीरे, अत्यन्त कष्टसे, वाष्पगद्गद कण्ठसे कहा—"आप फिर आवेंगे तो?" युवकने एक दीर्घनिश्वास त्याग कर कहा—"अच्छा, आऊँगा।"

"यह कौन है? क्या यह वेश्या है! छि:! मैं किसके साथ स्नान कर आया? वेश्याओंमें इतनी सुन्दरता होती है? इतना लावण्य, इतनी पवित्रता, वेश्याओंके घरमें? क्या यह वास्तवमें वेश्या है?—नहीं, नहीं, वेश्या कदापि नहीं हो सकती है। यह मेरी समझकी भूल है। वेश्याही हो, तो जानता कौन है? मैंने तो वेश्या कभी देखी नहीं—अच्छा फिर देखूँगा। केवल देखनेसे क्या दोष लगेगा, कुछ नहीं। नहीं, नहीं, मैं वेश्याको कदापि नहीं देखूँगा। माँ

यदि जान जायगी तो अपने मनमें क्या समझेगी? उस दु:खिनी विधवाका मैंही तो एकमात्र आधार हूँ। देखनेमें दोष क्या है? मै फिर देखूंगा—एक बार और देखूंगा। क्या एकबारही भर आँख देख लेनेसे मेरी पच्चीस वर्षकी पुण्य-प्रभा मलिन हो जायगी? देखते तो सभी हैं, फिर मैं क्यों न देखूँ? फिर एक बार अवश्य देखूँगा।"

इसी प्रकार अपने हृदयके साथ घोर द्वन्द्वयुद्ध करता-करता युवक अपने घर पहुँचा। युवकका पद-शब्द सुनतेही घरके भीतरसे एक वृद्धा बोलि उठी—"कौन रासू आया? मै कितनी देरसे तेरे इन्तज़ारमें खड़ी हूँ, राह ताकते-ताकते आँखें फूट गईं। और बेटा! इतना उपवास तुझसे कैसे किया जाता है? कल एकादशी थी, एकादशीके बाद शिवचतुर्दशी और उसपरसे यह ग्रहण; इसी उमरमें इतना उपवास करेगा? बेटा! तुझे मैं शादी करनेके लिये कहती हूँ, कहती हूँ कि बहू घरमें ला—यह तो तू करता नहीं, अपनी जिद ऊपर रखता जाता है। केवल मेरी यही एक साध है, कि घरमें बहू-बेटा देख आप संसारके सब झंझटोंको छोड़ माला जपूँ। तू तो मेरी बात मानता नहीं, अङ्गरेजी पढ़कर न जाने तू क्या करेगा?"

वृद्धा इसी प्रकारसे बहुत बोल गयी। वह प्रतिदिन पुत्रको शादी करनेके लिये इसी प्रकारकी छोटी-छोटी वक्तृता सुनाती थी। आजकी भी वक्तृतासे इसीकी सूचना मिल

रही है। किन्तु रामूने रूखे भावसे कहा :—"माँ मुझे एक कपड़ा दो।" वृद्धा इस बातको सुन पुत्रकी ओर देखकर बोली :—"क्यों तेरी कमरमें तो सूखी धोती है न? यह किसका कपड़ा है? क्या तूने गङ्गास्नान नहीं किया? तेरी धोती कहाँ है?" रामू माँकी बात सुनकर सिहर उठा, सारी बातें उसके हृदय-पटलपर आ पड़ीं—क्या कहूँ, इस बातको जल्दीमें स्थिर न कर सका। अन्तमें कुछ रुक कर बोला :—"हाँ, हाँ, यहीं-यहीं, पासही, अपने एक मित्रके मकानपर वह धोती रख आया हूँ और उन्हींकी एक धोती पहन कर आया हूँ।" वृद्धाने कहा :—"तब फिर कपड़ा कैसा माँगता है?" रामू इस समय फिर रुक कर बोला :—"उन्हींके घरका कपड़ा पहनकर भात खाऊँगा?" निदान वृद्धाने एक कपड़ा ला दिया। रसमय, माताके सामने कभी भी झूठी बात नहीं बोला है, आज विधि-विपाकसे वह भी कह दिया। हायरे रूप!

(२)

रसमय मित्र उच्च कुलीन-वंशीय एक कायस्थका पुत्र है। इसके पिता कलक्टरी आफ़िसके किसी एक सामान्य पदपर प्रतिष्ठित थे। ये अपने एकमात्र पुत्र रसमयको अत्यन्त यत्नके साथ प्रतिपालन करते थे; किन्तु रसमयके भाग्यमें बहुत दिनोंतक पितृ-सुखको उपभोग करना नहीं था! जब यह पाँच वर्षका था तभी इसके पिताने अपने दुखी परिवारको

इस असार संसारमें छोड़ स्वर्गलोककी यात्रा की। दुःखिनी विधवा माताने एक प्रकारकी भिक्षावृत्तिही धारणकर, रसमयको चार आदमियोंके बीचमें बैठने-योग्य बनाया। रसमय प्रवेशिका परीक्षामें उत्तीर्ण होकर २०) रुपये प्रतिमास स्कालरशिप पाता था। इस समय बिचारी बूढ़ी रसमयकी माँका कष्ट कुछ कम हुआ। इसके बाद प्रायः प्रत्येक परीक्षामें उच्च श्रेणीमें उत्तीर्ण हो रसमय स्कालर्शिप प्राप्त करने लगा, जिससे इसकी माँको इसे पढ़ानेके लिये अब परमुखापेक्षण करना नहीं पड़ता। रसमय अपने घरका एकमात्र लड़का था; विश्वविद्यालयसे परीक्षोत्तीर्ण, उच्च शिक्षासे शिक्षित युवक था। उसके हृदयमें अनेक उच्च भाव थे। उच्च आकांक्षाकी उच्च आशासे उसकी छाती सदैव फूली रहती थी। रसमय साधन-शील हिन्दू न होनेपर भी पवित्र-चित्त, पवित्र चरित्रका था। बूढ़ी माँ जिस समय शादी करनेके लिये अनुरोध करती—इस अनुरोधको वृद्धा प्रतिदिन दोनों सन्ध्या उसे करनेसे बाज नहीं आती—उस समय मलिन मुखसे रसमय कहता—"माँ! संसारमें मेरा कौन है? मैं भला किसके भरोसेपर, शादी करूँगा? आशीर्वाद दो माँ! जिसमें मैं कोई काम करने लगूँ। वकील होकर यथेष्ट अर्थ उपार्जन कर तुम्हारी बहुत दिनोंकी साध—तुम्हारी सारी आकांक्षा—पूर्ण करूँ।" वृद्धा प्रतिदिन इसी प्रकार पुत्रकी युक्ति सुनती एवं पुत्रके साथ विवाद करनेमें पराजित हो

सीमावलम्बन कर अलग हो जाती। इतने दिनोंतक इसी प्रकारसे माता-पुत्रका संसार चल रहा था, किन्तु आज पुत्रके हृदयमें एक नवीन प्रवाह प्रवाहित हुआ। आज रसमय उदास है। वृद्धाने प्रतिदिनके अनुसार आज भी उसी पुरानी बातको लेकर रसमयसे अनुरोध किया; किन्तु पुत्रकी मुखसे आज उसे वह पुरानी युक्ति न सुन पड़ी! इसीसे वह सिहर उठी। बोली, "बेटा रासू! आज तू उदास क्यों है?" पुत्रने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, कहा—"दो, भात दो।"

* * * *

प्रायः एक पक्ष व्यतीत हो गया, इतने समय तक युवक अपने हृदयके साथ विषम द्वन्द्वयुद्ध करता रहा। अनेकों बार उसने उस कपड़ेको हाथमें ले-लेकर फिर यथास्थान रख दिया, अनेकों बार कपड़ेको ले कर उसे दे आनेके लिये घरसे बाहर हुआ और पुनः लौट आया। आज जाऊँगा, कल जाऊँगा, कहकर भी उसके यहाँ जानेकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। देखनेकी इच्छा रहनेपर भी, उसको देखनेके लिये नहीं जा सकता था। किन्तु रसमयका हृदय सौ अस्त्रोंकी चोटसे जर्जरितकी तरह हो गया था। रसमय कभी रोता था, कभी अपने आप पर क्रुद्ध होकर अपनेको धिक्कारता था और कभी विद्रूपकी हँसी हँसकर अपने हृदयके सम्पूर्ण कष्टोंको दूर करनेकी चेष्टा करता था।

"नहीं; यह काम अच्छा नहीं है। यह कपड़ा मेरा

नहीं। कपड़ेको तो उसके यहाँ लौटा आनाही चाहिये। बस आजही—अभी—इस कपड़ेको उसे दे आता हूँ।" यह कहकर युवक शीघ्र-शीघ्र शोभाबाज़ारको ओर पैर रखता हुआ घरसे बाहर हुआ।

पूर्णिमाकी रात्रि है। वसन्तकी पूर्णिमा है। कलकत्तेके धूलि-समाच्छन्न रास्ते पर भी आज एक प्रकारकी मीठी हवा बह रही है। युवक अत्यन्त तेज़ीसे शोभाबाज़ारको ओर चला। वहाँ पहुँच कर बहुत दिनके परिचितकी तरह उसी गृहमें चला गया। वह एक दम सीधा ऊपरहीको ओर चला गया। ग्रहणके दिन जिस गृहमें भोजन किया था उसीमें जा पहुंचा। इस गृहमें कोई है भी ऐसा मालूम नहीं होता। युवकके पदशब्दको सुनकर वही पूर्वपरिचिता युवती धीरे-धीरे उस गृहमें आ गई, जहाँपर कि युवक आया था। युवकने युवतीको देखा—मन्त्रमुग्ध सर्पकी तरह उसके मुखकी ओर देखता रहा।

बहुत देरतक दोनों दोनोंको देखते रहे। निर्वातनिष्कम्प प्रदीपकी तरह दोनों रूप-शिखाके सामने पासही कुछ समय तक स्थिर हो जलने लगे। अन्तमें प्रणयके अनुकूल समीर-सन्ताड़नसे दोनोंने एकही साथ दीर्घनिश्वास त्याग किया मानों स्थिर रूप-शिखा झिल उठी। युवती धीरे-धीरे बोली :— "अभीतक खड़े क्यों हैं ? बैठते क्यों नहीं ?" युवक किङ्कर्त्तव्य-विमूढ़, विह्वल, विभोर हो जहाँ खड़ा था वहीं बैठ गया।

वह मकान अन्धकारमय है। प्रदीप वा लैम्प कुछ नहीं है। केवल वातायन-पथसे चन्द्रमा जो वियोगाग्निसे शुष्क-हृदया युवतीके लिये ज्योत्स्ना दान कर रहा है उसीसे युवकने उसे वृन्तच्युत यूथिकाकी तरह सूखी हुई देखा!

मोजेसने जनशून्य भीषण मरुभूमिको अतिक्रम करनेके समय तृष्णार्त होकर अपनी जादूकी छड़ीसे एक शुष्क प्रस्तर-खण्डको आघात किया था। उसी आघातसे प्रस्तरके चिरशुष्क वक्षके विदीर्ण होनेसे पवित्र, स्वच्छ सलिलप्रवाह कुल-कल नाद करता हुआ बाहर हुआ था। मोजेसकी तृष्णा उसी जलसे शान्त हुई। रसमय भी संसार-मरुमें तृष्णार्त होकर उसी तृष्णाकी ताड़नासे इतने दिनोंतक अनेकों बार अपने हृदयमें आघात किया करता था किन्तु वह आघात अबतक व्यर्थही गया। जब तक प्रणयकी जादूभरी छड़ी नहीं होती तब तक प्राणियोंका पाषाणवक्ष विदीर्ण नहीं होता। रसमयने उसी ग्रहणके दिनसेही प्रणयकी जादूभरी छड़ी प्राप्त की है। यही कारण है कि आज युवतीका शुष्क, विवर्ण मुखमण्डल देखकर इसका हृदय टूक-टूक होगया और उससे प्रेमकी शतधाराएं प्रवाहित हुईं, जिनमें रसमयको डूब जाना पड़ा। इसमें सन्देह नहीं कि रसमय उस प्रेम-प्रवाहमें डूब गया परन्तु उसकी तृष्णा दूर न हुई, बल्कि, और बढ़ही गई। तृष्णामेंही यातना है। फिर रसमयकी तृष्णामें यातना न होगी, सो क्यों? परन्तु हाँ, रसमयकी तृष्णाकी यह यातना सुखकी यातना

अवश्य है! रसमय अपनेको इस यातनासे सम्हाल न सका! सहसा युवतीके समीप जाकर उसका हाथ पकड़ लिया। क्या कहूँ इसको स्थिर किये बिनाही ईषत्कम्पितकण्ठसे बोला:—"यह लो, यही तुम्हारा कपड़ा लाया हूँ।"

युवककी इस बातपर कान न देकर युवतीने कहा:—"तुम आगये, इसीको मैं अपना अहोभाग्य समझती हूँ! मैं तो समझी थी कि अब तुम आवोगेही नहीं। मुझे वेश्या जान फिर मुझसे भेंट नहीं करोगे! क्या वेश्याएँ इतनी नीच हैं?

रसमय—नहीं, नहीं, सो बात नहीं है, तुम वेश्या हो इससे क्या? मेरे आनेमें अनेक अड़चन हैं, यही कारण है कि मैं नहीं आता था। देखो; घरमें केवल मेरी बूढ़ी माँ हैं; एक दासी है, चौका-बरतन करनेके लिये वह रातको रहती नहीं तो भला माँको इस दशामें अकेली छोड़ कैसे आ सकता हूँ?

युवती—यहाँ आनेकी यदि आपकी इच्छा रहती तो दिनके समय भी आ सकते थे। इससे मालूम होता है कि आपके यहाँ न आनेका यह कारण नहीं है। मैं वेश्या हूँ और वेश्याको छूना आप लोग पाप समझते हैं, बस मेरे देखनेमें यही कारण मेरे यहाँ न आनेका मालूम होता है! महाशय मैं वेश्याकी लड़की हूँ, अवश्य, किन्तु आप निश्चय समझें मै अभीतक वेश्या नहीं हुई हूँ। क्या, वेश्याकी कन्या होनेमें भी दोष है? इस दोषका भागी तो मुझे नहीं होना चाहिये।

रसमय—छि: भला ऐसी बात तुम क्यों कहती हो ? तुम्हारे वेश्या होनेसे क्या ? मैं यहाँ पर क्यों नहीं आया, भला इसको मैं तुम्हें कैसे समझा सकता हूँ ? तुम्हारे यहाँ न आनेसे मुझे कितना कष्ट हुआ है इसको भला मैं तुमसे कैसे कह सकता हूँ ? तुम तो अपनेको वेश्या कहती हो परन्तु क्या वास्तवमें तुम वेश्या हो ? नहीं नहीं, तुम वेश्या कदापि नहीं हो। यदि तुम वेश्या रहतीं तो तुम्हारी देहसे ऐसी दिव्य ज्योति कदापि नहीं निकलती। अस्तु, चाहे तुम वेश्या हो या कुलनारी हो, तुम्हारे इस परिचयसे हमें कोई प्रयोजन नहीं, मैं तो केवल तुझे देखना चाहता हूँ, देखकर सुखी होना चाहता हूँ।

युवती—नहीं नहीं, वेश्याको मत देखो ; मैं वेश्या हूँ— वेश्याको तुम मत स्पर्श करो। तुम्हारे हाथका पवित्र जल मेरे स्पर्शसे अशुद्ध होगा।

रसमय—तुम ऐसी-ऐसी बातें कह मुझे क्यों जला रही हो ? तुम्हारे मुखसे यह सब सुननेसे मेरे हृदयको बड़ा कष्ट मालूम होता है।

युवती—तुम तो सब बात जानते नहीं। हमलोगोंकी अवस्था कैसी रहती है, इसे भी तुमने किसीसे सुना नहीं है ; तो भला ऐसी अवस्थामें वेश्याओंके दुःख तुम कैसे समझ सकते हो ? देखो, मैं वेश्याके पेटकी हूँ, इस समय केवल यही माँ मेरा आधार है। इस संसारमें सिवा इनके और दूसरा

कोई मेरा अभिभावक नहीं। हाँ, एक धनका भी मुझे बड़ा भरोसा है। उस धनको इसी देहको बेंचकर—अपने इह-काल-परकाल दोनोंका सत्यानाश कर, उपार्जन करना होगा। तुमलोग हमें देख सकते नहीं, हमें पतित जीव समझ कर समाज भी हमलोगोंकी कोई ख़बर नहीं लेता। हमलोगोंके कष्टोंको देखकर निरादरकी हँसी हँसकर समाज हमारा निरादर करता है। हम लोगोंको असंख्य कष्ट हैं।

रसमय—मैं बार-बार तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि ऐसी-ऐसी बातें कह मुझे जलाओ मत परन्तु तुम सुनतीं नहीं! इन सब बातोंके सुननेसे मैं पागल हो जाऊँगा।

युवती—नहीं नहीं, पहले मेरी बात सुनो, मुझे अपने दुःखकी राम-कहानी समाप्त करने दो। देखो, मुझे रुपये चाहियें; माँको देनेके लिये, अपनी वृद्धावस्थामें जीवन धारण करनेके लिये भी रुपयेकी मुझे आवश्यकता है। रूपके बाज़ारमें रूप बेंचकर हमलोगोंको रुपयेकी आवश्यकता मिटती है। मुझे भी ऐसाही करना होगा। अन्ततः, माँकी तो इच्छा हैही। तीन वर्षसे ये मेरा लालन-पालन करती हैं, उपयुक्त शिक्षकके यहाँ इन्होंने मुझे लिखना-पढ़ना, गाना-बजाना सिखलाया है। मेरे लिये मुझे अपनी जातिके उपयोगी शिक्षासे शिक्षित करनेके लिये इन्होंने जी खोलकर रुपये-पैसे ख़र्च किये हैं। मैं अपनी माँकी बड़ी आशाकी सामग्री

हूँ। माँ अब हवा हो चलीं। इस समय उन्हें मैं रुपये नहीं दूँगी तो और दूसरा कौन देगा?

रसमय—बस अब चुप रहो, मुझे अधिक पागल मत करो। अर्थके अभावसे इस संसारमें जितना कष्ट मैंने पाया है, उतना कष्ट शायदही और किसीको उठाना पड़ा होगा। मैंने इस समय भी उस कष्टसे छुटकारा नहीं पाया है। मैं तुम्हारी सहायता कैसे कर सकता हूँ?

युवती—तुम मेरी सहायता करो या न करो, परन्तु मुझे रुपयेके लिये रोज़गार करनाही पड़ेगा। तुम्हारी बूढ़ी माँ तुम्हारी कमाई खानेकी लालसामें है; मेरी माँ भी मेरी कमाई खानेकी लालसासे मेरा मुँह निहारा करती है। किन्तु हम दोनोंमें इतनाही अन्तर है कि हमलोगोंकी ज्वाला बुझती नहीं, तुम्हारी ज्वाला बुझनेके उपाय हैं।

रसमय—बस बस, रहने दो। अब चाहे जैसे हो, मैं तुम्हें अवश्य रुपये दूँगा। तुम मेरी हो। मैं तुम्हें हृदयसे चाहता हूँ। इन पन्द्रह दिनोंमें तुमसे मिलनेके लिये मेरे हृदयमें जैसी व्याकुलता हुई थी उसे मैं अब सह नहीं सकता। तुम वेश्या हो या जो हो, परन्तु अब तुम यदि मेरी न होगी तो मैं मरूँगा—पागल हूँगा। तुम मेरी हो। मेरी बूढ़ी माँ अब अपने इस अपमानसे भलेही मरें।

युवती—मैं भी तुम्हारी हूँ, किन्तु जिस भावसे तुम्हारी होनी चाहिये उस भावसे तो मैं तुम्हारी हो नहीं सकती।

तुम जानते नहीं कि इन पन्द्रह दिनोंको मैंने किस तरह बिताया है। इस मानसिक कष्टका कारण तुम्हारे देखनेकी लालसा है। तुमने अपना परिचय मुझे नहीं दिया, अपना पता-ठिकाना मुझे नहीं बताया तो भला इतने बड़े कलकत्ते शहरमें, मैं कहाँ तुम्हें तलाश कर सकती थी? बस यही कारण है कि, पल-पल पर, निमेष-निमेष पर, तुम्हें देखनेके लिये प्राण रो उठते थे। तुम्हें देखनेका कोई उपाय न देख दशों दिशाएं अन्धकारसी देख पड़ती थीं; इसके ऊपरसे इस अपनी माँकी ताड़ना! तुम्हारे ऊपर मैं प्रेम करती हूँ, बस इसी कारण माताकी यह ताड़ना भी भोगनी पड़ती है; माँकी इस ताड़नाका एक और कारण है कि सोलह वर्षकी मेरी अवस्था हो गई और अभीतक मैं अपना जातीय व्यवसाय नहीं करती; किन्तु मैं तो केवल तुम्हें प्यार करती हूँ; तो भला इस दशामें अपना नीच जातीय व्यवसाय कैसे कर सकती हूँ?

युवती अब अधिक न बोल सकी। उसका गला भर आया, आँखोंसे मुक्ताविन्दुकी तरह आँसू गिरने लगे। रसमय अपनी चादरसे उन अश्रुओंको पोंछने लगा। किन्तु जितनाही वह पोंछता जाता था, अश्रुप्रवाह उतनेही वेग से और प्रवाहित होता जाता था—छिन्न धमनीसे उन्मुक्त रक्तस्रोतकी तरह आँखोंसे प्रीतिकी मूलधारा प्रवाहित होने लगी। रसमय अब अपनेको सम्हाल न सका, वह भी रो उठा। सर्प

काटनेपर रोगी लहरकी झोंकसे जैसे—जिस प्रकारसे—झुकता है, वैसेही रसमयकी आँखोंमें अश्रु देखकर युवतीने उसके वक्षःस्थल पर झुककर अपना माथा रख दिया। रसमय अब अपने आपमें न रहा। रसमय अब गल गया—सौन्दर्य्यके उस सागर-सङ्गममें वालुका-पिण्डकी तरह गल गया। युवतीका चिबुक धरकर कितना आदर किया, कितना खेल किया, निदान अब अधिक देरतक अपनेको रोक न सका, उसके अधरपर अत्यन्त छिपे-छिपे, मानों अत्यन्त डरते-डरते, एक चुम्बन लिया। इस सौभाग्यसे—स्वर्गीय सुखसे—युवतीने अपनी आँखें ढांपली। इसी समय युवती की माँ आकर कड़े शब्दोंमें बोली:—"छिः अभागी! क्या इसी लिये इतने कष्टसे तुझे पढ़ा-लिखाकर मैंने आदमी बनाया है? तूने अभीतक कुछ भी नहीं सीखा। घरमें एक भलेमानस आये हैं, इन्हें एक चिलम तमाकू देना चाहिये, पनडब्बा लाकर एक बीड़ा पान देना चाहिये; एक साफ़-सुथरा कपड़ा पहनकर इनके पास बैठना चाहिये! तू ऐसेही मुर्देकी तरह पड़ी हुई है! हाय, मेरी क़िस्मत फूट गई! सब करा-धरा मिट्टीमें मिल गया! महाशय! आइये, इधर चलिये उस घरमें, जहाँ चिराग़ जल रहा है।" लज्जित भावसे युवक जल्दी-जल्दी वहाँसे उठा एवं उस बूढ़ीके पीछे-पीछे जाकर एक दूसरे गृहमें प्रवेश किया।

इस गृहमें एक शमादान में एक बत्ती जल रही है,

घरकी सफ़ाई देखतेही बन पड़ती है। दीवार में चारों ओर सुन्दर-सुन्दर स्त्रियों के चित्रपट टँगे हुए हैं। नीचे एक फ़र्श लगा हुआ है, जिस पर दूधकी तरह उजले रंगका जाजिम बिछा हुआ है, पांच-छः छोटे-छोटे तकिये भी रखे हुए हैं। उत्तर ओरकी दीवारमें एक बड़ासी मसनद लगी हुई है, उसके सामने एक बड़ीसी दर्पण टँगा हुआ है। उसी गृहकी एक ओर एक मसहरीदार पलंग बिछा हुआ है, उस पर भी छोटे ७।८ झालरदार तकिये रखे हुए हैं। मसनद जहाँ पर है, वहां से थोड़ी दूर और आगे एक शमादान में बत्ती जल रही है। जिन पाठकोंने कभी वेश्याओंके गृहमें पदार्पण करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है उनसे अधिक कहने की आवश्यकता न पड़ेगी। वे इतनेही से समझ जायंगे। परन्तु जिन्हें उस स्वर्गीय गृहको देखने का सौभाग्य नहीं मिला है, उनसे यही कह देना अलम् होगा कि गृह नवीन सभ्यतासे भली भाँति सुसज्जित किया गया था।

रसमय डरते-डरते इस गृहमें प्रवेश कर उसी ज़मीन पर लगे हुए फर्श पर बैठ गया। एकबार, मानों कातर दृष्टिसे, उसने उस गृह की सारी सामग्रियों पर अपनी दृष्टि दौड़ाई। वाराङ्गनाओंके गृहमें इसका यही पहले-पहल प्रवेश है। चिरदुःखी रसमयने सांसारिक किसी कार्य्य को सीखा नहीं, कुछ भी जाना नहीं। वह जानता था केवल

अपनी बूढ़ी माँको, और जानता था केवल अपनी पाठ्य पुस्तकों को। वाराङ्गनाओंका विलास-गृह, "विषरसभरा कनकघट जैसे" की तरह, कितना भयङ्कर होता है, इसे वह नहीं जानता था। यही कारण है कि चञ्चल दृष्टिसे वह चारों ओर देख रहा है। इसी समय युवतीने एक सब्ज़ रङ्गकी बूटेदार, पतली, बनारसी साड़ी पहनकर, विविध आभूषणोंसे विभूषित होकर उस गृहके भीतर प्रवेश किया। युवतीके नीलनयनकी दीप्ति, रागरञ्जित कपोल-युगलकी द्युति, कम्बु-कण्ठकी अमल-धवल वर्णच्छटा, हरिद्वर्णके वस्त्रकी श्यामल शीतल आभाको युवक देखने लगा। इतना रूप भी होता है! इतने सौन्दर्यको भी लेकर स्त्रियाँ जीती रहती हैं! रसमय निर्वात, निष्कम्प, निर्निमेष आँखोंसे उसको देखने लगा। अपने आपको भूल, अपनी वृद्धा माताको भूल तथा पचीस वर्षकी अर्जित अपनी पुण्यराशिकी उपेक्षा कर, रसमय उस वेश्या-कन्याको देखने लगा।

"जाओ, मालति! बाबूके पास बैठो। इस प्रकारसे खड़ी क्यों हो?"

मालती खड़ी होकर काँप रही थी,—भयसे, लज्जा से, उद्वेगसे, आकांक्षासे, खड़े-खड़े काँप रही थी। किन्तु माँकी बात सुनकर मानों एक प्रकारसे अप्रतिभ हो, शीघ्रतासे रसमयके पास जाकर बैठ गयी।

(४)

मालती बहुत देरतक रसमयके मुखकी ओर देखती रही, रसमय भी अर्द्धनिमीलित आँखोंसे मालतीके अनिन्द्य-सुन्दर मुखको देख-देखकर अपनी आकांक्षा मिटा रहा है। दोनोंकी आँखें, उस समय लज्जासे नम्र, उदास, आग्रहपूर्ण, भीति-विह्वल और एक अज्ञेय उत्कण्ठासे आकुल हैं। देखते-देखते क्रमशः दोनोंकी आँखें प्रमोद-मदिराके आवेशसे या मोहस्वप्नसे, अर्द्धनिमीलित हो गईं। दोनोंकी आँखोंने एक नीरव भाषासे दोनोंके हृदयकी न जाने कितनी गुप्त बातोंको कहा! निदान, मालतीका अधर ईषत् कम्पित हुआ— मानों अब वह अपने हृदयके रुद्धप्रवाहको छिपाये नहीं रख सकती है। मालती बोली। उस वीणाविनिन्दित— अमरावतीकी अप्सराके कण्ठके मोहनमन्त्रमय मधुर झङ्कारसे रसमयका हृदय भर उठा। मालती बोली—"तुम मेरे सर्वस्व हो, तुम्हें मैंने इतने दिनोंतक देखा नहीं—तुम्हें आजतक पहचाना नहीं! किन्तु तुमको देखनेसे मालूम होता है कि तुम मेरे बहुत दिनोंके परिचित हो,—मानों, तुम मेरे जन्मजन्मान्तरके स्वामी हो। तुम्हें देखने मात्रसेही तुम्हारे प्रति मेरा वह जन्मजन्मान्तरका प्रेम जाग्रत हो उठता है। इसीसे हे प्रभो, हे स्वामी, हे देवता, तुमसे मैं प्रेम करती हूँ, तुम्हें हृदयसे चाहती हूँ इसको भला मैं आपको कैसे समझा सकती हूँ। चलो, हम दोनों, किसी एकान्त

देशमें, एकही साथ, रहें। इतना अन्तर भला कैसे सहा जायगा ?

रसमय—मैं अपनी बुढ़ा मांको छोड़ कर भला कैसे जा जा सकता हूँ और उन्हें साथ भी नहीं ले जा सकता हूँ।

मालती—हाय! भगवान्! मैं वेश्याकी लड़की क्यों हुई? यदि मैं किसी कुलीनकी लड़की रहती, यदि तुम्हारे साथ मेरी शादी हो सकती; तो मैं तुम्हारे सब विषयकी अधिकारिणी होती, सारे सुखोंसे सुखिनी होती। हाय जगदम्बे! मैं वेश्याकी कन्या क्यों हुई, यदि वेश्याकी कन्या हुई, तो इस प्रकार इनसे प्रेम क्यों किया? और यदि इस प्रकारसे प्रेमही किया तो मरी क्यों नहीं? मेरे विचारसे तो मेरे मरनेहीमें सुख है।

रसमय—परन्तु मुझे तो मरनेमें भी सुख नहीं। मरनेमें कितना सुख होता है, उसे मैं जानता हूँ। तुम्हारी तरह स्वर्गके पारिजातको गोदमें लेकर मरनेसे और कितना अधिक सुख मिलता है, इसे भी जानता हूँ; किन्तु मरनेका मेरा अधिकार नहीं; क्योंकि मेरी बुढ़ा मा जीवित हैं। मालती! मैं केवल तुम्हें देखूँगा। जिस समय हृदय व्याकुल होगा, उस समय तुम्हें देख-देख जीऊँगा। आज जिस प्रकार तुमने दर्शन दिया है उसी प्रकार दर्शन सदैव देना होगा।

मालती—तुम्हें देखनेकी, तुम्हें लेकर रातदिन तुम्हारे साथ रहनेकीही तो मेरी साध है। मेरी उस साधमें अब

कोई आपत्ति आ खड़ी होती है, तभी तो मुझे दुःख होता है। देखो, स्वर्गका पारिजातकुसुमही देवताको समर्पण किया जाता है। तुम मेरे देवता हो, तुम्हें मैं क्या दे सकती हूँ? देनेके योग्य तो मेरे यहां कुछ भी नहीं—क्योंकि मैं वेश्या ठहरी। किन्तु हाँ, तुम मुझे अपनी चरण-धूलि दो, जिससे मैं कृतार्थ होऊं!

रसमय—तुम्हीं मेरा सब-कुछ हो। मैं तुम्हें किस नज़रसे देखता हूँ, इसको भला, तुम कैसे समझ सकती हो? तुम्हीं मेरी संसार हो, तुम्हीं मेरा स्वर्ग हो, तुम्हीं मेरा नन्दनकानन हो, और तुम्हीं मेरा पारिजात हो। बड़े दुःखकी बात है कि तुम्हें—तुम्हारी छविको—देखनेका मुझे अवसर नहीं। एकबार देखनेसेही पल, दण्ड, प्रहर, काल सभी कुछ भूल जाता हूँ; किन्तु मैं रास्तेका भिक्षुक ठहरा, दो मुट्ठी अन्नके लिये सर्वदा कातर रहता हूँ। तुम इन्द्राणी हो, मैं मर्त्यलोकवासी हूँ, भला इस दशामें तुम्हारी सेवा मैं कैसे कर सकता हूँ?

अब मालती अपनेको सँभाल न सकी, इस बातको सुनतेही रो दी। रोते-रोते अपने दोनों हाथोंसे उसने अपना मुख ढाँप लिया। शरीरके भीतरका प्रणय-प्रवाह रह-रह कर तरङ्गित होने लगा, मालतीका देह-लावण्य, समीर-सन्ताड़ित सरोवरके स्वच्छ जलकी तरङ्ग, ढल-ढल करने लगा। रसमयने इसे भी सुन्दरही देखा—उसको यह भी—मालती-

का रोना भी सुन्दरही ऊँचा। जिसे सौन्दर्य है, उसकी हँसीमें सुन्दरता है, उसके रोदनमें सुन्दरता है, उसके दुःखमें रूप है, क्रोधमें रूप है ; कहनेका तात्पर्य यह कि उसको सारी दशामें उसकी देहसे सौन्दर्यराशि फूट-फूट कर दिगन्तको भी सौन्दर्यशाली कर देती है। सौन्दर्योन्मत्त रसमय मालतीको देहमें इन्द्रधनुषके वर्ण-वैचित्रकी तरह केवल सौन्दर्य-वैचित्र देखने लगा।

पाठक ! क्या आप बता सकेंगे हैं कि इस खेतमें पतङ्ग कौन है ? मालती या रसमय ? रसमयकी दृष्टिमें मालतीके रूपमें वह्नि-शिखा है और मालतीकी दृष्टिमें रसमयकी देहमें भी रूपकी वह्नि-शिखा है। दोनोंको रूप-शिखामें दोनों झुलस रहे हैं। इसलिये दोनोंही तो पतङ्ग हुए। दोनोंही दोनोंकी नयन-ज्वालामें जल रहे हैं। दोनोंकी आँखोंमेंही देखा-देखी है। मालतीकी भी आँख देखना जानती है, रसमयकी भी आँख देखना जानती है। अग्निशिखा, अग्नि-शिखाकोही जला रही है।

"महाशय ! क्या आप घर नहीं जायँगे ? अब रात अधिक बीती जाती है।" यही कहती हुई मालतीकी माँने उस घरमें प्रवेश किया। सुनतेही, रसमय भी शीघ्रतासे उठ खड़ा हुआ। सामने मालतीकी माँको देखकर रसमयका मुख काला हो गया। परन्तु न जाने लज्जासे या विक्षोभसे ; परन्तु हाँ, शरीरके भीतर किसी स्थानपर प्रबल वेगसे प्रवाहित

रक्तस्रोतके हठात् बन्द हो जानेसे, उसके आगेका स्थान जैसा काला हो जाता है, रसमयका मुख भी वैसाही हो गया। रसमय अपने प्राण, मन, प्रवृत्ति, पिपासा, आशा, आकांक्षाको अपने मुखके ऊपर लाकर मालतीका मुख देख रहा था,—मालतीकी सुन्दरताके आकर्षणसे, रसमयके हृदयकी एक-एक प्रवृत्ति, एक-एक आकांक्षा, मानों उल्कापिण्डकी तरह उसके वदनमण्डलसे टकरा जाती थी; उस दशामें आकस्मिक बाधा पानेसे वह समुद्भासित वदनमण्डल क्या अन्धकारसे आवृत नहीं होगा? रसमय उदास मुखसे, घरसे बाहर होने लगा और मालती आकर रसमयका हाथ पकड़ बाष्प-गद्गद कण्ठसे बोली,"आज तो तुम मुझे ऐसी दशामें त्यागकर जा रहे हो। तुम्हारा फिर यहाँ पर आना कितना दुस्साध्य है, इसे तो तुम जानते नहीं। तुम्हारे चले जानेपर कितना अत्याचार होगा, इसे भी तुम नहीं जानते—तुम्हारे चले जानेपर मुझे कितनी यन्त्रणा सह्य करनी पड़ेगी इसका कुछ ठिकाना नहीं! बस तुम केवल यही इतना याद रखना—मैं तुम्हारी हूँ—तुम्हें अपने हृदयमें धारण कर सब सहूँगी। आदर कर, प्यारकर, तुमने मुझे स्वर्गीय कुसुम कहा है, मैं उसी स्वर्गके कुसुमकी तरह तुम्हारे योग्य होनेकी चेष्टा करूँगी।"

"जा मर, अभागी! कितना ढँग सीखा है! इसी झाड़से तेरी अक्ल दुरुस्त कर दूँगी। इतना लिखना-पढ़ना

सिखलाया, इतना गाना-बजाना सिखलाया, जिसके बाद ऐसी बुद्धि हुई! जायँ, आप अपने घर जायँ, किसी भले-मानसके लड़केको ऐसी-ऐसी जगहोंमें रहना ठीक नहीं।" इस प्रकार गर्जना कर मालतीकी माँने रसमयको घरसे बाहर कर दिया।

(५)

रसमय जब उस घरसे बाहर आया और बाहरकी हवा लगी, तब वह कुछ स्थिर हुआ। थोड़ी देर स्थिर होनेके बाद दीर्घनिश्वास त्यागकर, एक बार मालतीके घरकी ओर देखकर अपने गन्तव्य पथसे चलना आरम्भ किया। चलते-चलते वह सोचने लगा:—

"मैं तो वेश्या चाहता नहीं! क्योंकि मैंने कभी वेश्या देखी नहीं। वेश्याओंका दर्शन भला मुझे होही कैसे सकता है! मैं तो दरिद्रका लड़का हूं। मुझे स्वप्नमें भी इन अर्थलोलुपा भगवतियोंका दर्शन कहाँ? क्या वेश्याएँ ऐसीही होती हैं? क्या यही उसकी छलना है? नहीं यह सम्भव नहीं! मुझे क्या है कि वह मेरे साथ छलना करेगी? मालती मुझे हृदयसे चाहती है, नहीं तो इस प्रकारसे मेरे यहाँ क्यों आती? परन्तु मालतीकी माँ जो है वह तो मेरे साथ मालतीको मिलने देना चाहती नहीं। अन्ततः आजके व्यवहारसे तो ऐसाही मालूम हुआ है। क्या मालती अपनी माँकी बात उठा सकती

है? उसको आज्ञा उल्लङ्घन कर सकती है? क्या सदैव इसी भाँति मालतीका प्रेम मुझपर वह बना रहने देगी? मालतीने भी तो आज रुपयेके विषयमें छेड़छाड़ की थी। क्या वास्तवमें वह मुझसे रुपये माँग रही थी? नहीं-नहीं, कदापि नहीं, वह इसी बहाने मेरी परीक्षा ले रही थी। छिः! ऐसी-ऐसी बातोंकी चिन्ता कैसी? इन सब भावनाओंसे मुझे किसी प्रकारका कोई सम्बन्ध नहीं! मालतीपर मेरा प्रेम है, मुझपर मालतीका प्रेम है; मैं उसे चाहता हूँ, वह मुझे चाहती है...बस यही चिन्ता मेरे लिये सुखकारी है। कहाँ सूर्य्यग्रहण, कहाँ गङ्गास्नान,—कहाँ मैं और कहाँ मालती! इस सङ्घटनको किसने किया? मालती भलेही वेश्या हो, किन्तु वह सुन्दरी है, मैं सुन्दरताका कङ्गाल हूँ, सौन्दर्य्यका भिखारी हूँ, यही कारण है कि उसके द्वारपर आया था। समुद्रका जल भलेही लवणाक्त हो, परन्तु गङ्गास्रोत गोमुखीसे बाहर होनेपर भी सागरसङ्गम होनेके समय सैकड़ों धार होकर उसमें मिल जाता है। मालती मेरी है, मैं उसमें मिल जाऊँगा, वह भलेही वेश्या हो। मैं उसीका हूँ, उसे पाऊँगा क्यों नहीं? रूप, भगवान्के माधुर्य्यकी छायामात्र है, वह रूप जिसके यहाँ हो चाहे वह वेश्या हो, या नीचसे भी नीच कुलकी हो, परन्तु वह रूप साधककी आराध्य देवी है। मालतीका रूप मेरे मनोयोग्य है, मैं उस रूप-दर्शनसे आत्म-ज्ञानरहित हूँ। मालती मेरी इष्ट-देवी है। क्या मालतीको

नहीं पाऊँगा? अवश्य पाऊँगा। यदि मालती मेरी न हुई तो काव्य, माधुर्य्य-भाव, सभी मिथ्या समझूँगा।

इसी तरह विचार-तरङ्गमें डूबता उतराता रसमय घरकी ओर आ रहा है। जब मन, युक्तिकी खोजमें लग जाता है, तब युक्तिकी कमी नहीं रहती, हृदयके चक्रको एकबार घूम जाने दो, फिर बुद्धिकी लगामको पकड़ रोकनेकी सामर्थ्यका अभाव नहीं रहेगा। रसमयको भी उसकी कमी न हुई। उसकी विद्या-बुद्धि अनेक युक्तियोंका संग्रह कर, उसकी प्रवृत्तिकी पोषकता करने लगी। किन्तु जैसेही गलीके मोड़की ओर लौटकर अपना घर देखा, वैसेही अपनी वृद्धा माँ, उसे याद हो आई। बूढ़ी माँकी याद आतेही रसमय विचारने लगा—"यदि मालती वास्तवमें वेश्या है, तो उसके स्पर्शसे मेरी जाति जायगी। अपनी वृद्धा माँके मुखमें गङ्गाजल देनेका तो अधिकार मेरा रहेगा नहीं। मेरी मांकी क्या दशा होगी? क्योंकि मैंही अपनी माँका एकमात्र पुत्र हूँ! परन्तु वेश्या हो, या जो कुछ हो, मैं तो मालतीके लिये पागल हूँ; इस समय तो मेरा इहकाल-परकाल सभी कुछ मालती है। मेरे इस प्रेमका हाल तो माता जानती नहीं। उनकी इच्छा है—मैं विवाह करूँ, विवाह कर संसारी होऊँ, उनके सम्पूर्ण दुःखोंका अवसान करूँ; किन्तु विधि-लिपि औरही तरहकी मालूम होती है; इस समय मैं तो अपना नहीं हूँ, मैं अपने हृदयके इस वेगको किस प्रकारसे रोक

सकता हूँ? यदि मालतीको न भी देखूँ, तोभी उसे भूल नहीं सकता। मैं पागल हूँ—पिशाच हूँ। हाय! क्या मैं अपनी माँके हृदयमें दुःख देकर—मातृहत्या कर रूपसागरमें डूबना चाहता हूँ? किन्तु आज मैंने उसका जो रूप देखा है, उसे तो कभी नहीं भूल सकता। अब चाहे जो कुछ हो, सब सहनेके लिये प्रस्तुत हूँ। व्यर्थकी इन भावनाओंसे क्या लाभ?

इसी प्रकार अनेक तरहसे तर्क-वितर्क करता रसमय अपने घर पहुँचा। यद्यपि वृद्धा माँ, जराजीर्णा हैं, उनकी आँखोंमें वैसी ज्योति नहीं, शरीरमें वैसी सामर्थ्य नहीं, बीच-बीचमें बुद्धि भी नष्ट हुआ करती है; किन्तु रसमयके सारे भावान्तर, रसमयकी आँखोंकी चारों ओरके काले, पतले दागतक भी वह देख लेती हैं। रसमयके विरूप-भावको वह समझती हैं। वह बोली, "क्यों रे रासू! तू दिनोंदिन ऐसा क्यों होता जाता है? हरदम उदास क्यों रहता है? बीच-बीचमें चौंक उठता है, बात-बातमें न जाने क्या बड़-बड़ किया करता है, रातदिन इधर-उधर घूमा करता है, ठीक समय पर खाता नहीं, बिछौने पर लेटा-लेटा हरदम जागता रहता है, तू ऐसा क्यों हुआ? तुझे क्या हुआ है, मुझसे कह! मैं तो तेरी माँ हूँ। मुझसे लज्जा कैसी? आज श्यामा दीदी आयी थी, वह कहती थी कि जगदीपके एक बहुत सुन्दर लड़की है, उमर भी उसकी कम है; तुम्हारे साथ,

उसके पिता, उसको शादी करना भी चाहते हैं, उनलोगोंकी इच्छा, तुम्हारी शादी कर, तुम्हें भी अपने घर रखनेकी है, क्योंकि उन्हें तो दूसरा कोई लड़का-बच्चा नहीं। बेटा! तुम्हें सुखी देखकरही मैं सुखी रहूंगी, तुम्हारी शादी हो जानेके बाद मैं वृन्दावन जाकर रहूँगी। नातीका सुख देखना, क्या मेरे जैसी अभागिनियोंके ललाटमें लिखा रहता है? तुम लिखे पढ़े, चतुर् हो, अपने आप देख-सुनकर शादी ठीक कर लो। तुम्हें अब दूसरा कौन है? बेटा! आज आँखसे ख़ून गिरता है कि तुम्हें अपनी शादीके लिये आपही सब ठीक करना पड़ेगा। बेटा! आज यदि वे जीवित रहते, तो मुझे और तुम्हें इतनी चिन्ता नहीं करनी पड़ती!" कहते-कहते वृद्धा रोने लगी। रसमय भी रो उठा। माँके सामने बैठ कर फूट-फूट कर, सिसक-सिसक कर रोने लगा; रसमय चिल्लाकर रो न सका; किन्तु इस समय उस पर जैसी बीतती थी, वही जानता होगा। बूढ़ीने पुत्रकी दुःखको देखकर अपने शोकको मात्रा कम की। इस प्रकारसे रसमय माँके पास बैठ कर कभी नहीं रोया है। रसमय को केवल पितृशोकही नहीं है, इस समय उसके हृदयमें प्रयागकी त्रिवेणी-धारा प्रवाहित हो रही है—गङ्गा, यमुना और सरस्वती तीनोंका सम्मिलित स्रोत है। पितृ-भक्ति, मातृ-स्नेह और युवतीका प्रेम इन तीनोंके घात-प्रतिघातसे रसमयके हृदयमें एक विराट् भाव-प्रवाहकी सृष्टि हुई है।

इसे अपने हृदयमें न रोक रखनेके कारणही, रसमयने आँखकी राहसे उसके निकलनेका रास्ता खोल दिया है। वृद्धा, पुत्रकी ऐसी अभूतपूर्व्व अवस्था देखकर विस्मित, चकित एवं आतङ्कित हुई।

(६)

वैशाखका महीना है, कलकत्तेकी सड़कोंपर जितनी धूल है उतनीही तीखी धूप भी है। सूर्य्यके उत्तापसे सम्पूर्ण संसारही शुष्क अथच कठिन हो गया है। पत्थरकी सड़कों पर भी धूलि उड़ रही है, राह कठिन और ऊबड़-खाबड़ हो गई है। घोड़ा गाड़ीके खड़-खड़ घड़-घड़ प्रभृति शब्दोंसे आकाश की शुष्कता और मार्गकी बन्धुरता स्पष्ट विदित हो रही है। आकाशके ताम्रवर्णने धूलि-समाच्छन्न होकर किञ्चित् धूसरता प्राप्त की है। भगवान् सूर्य्यनाथ उत्तप्त ताम्र-गोलककी तरह कुछ लोहितवर्णसे प्रतिभात हो रहे हैं। सूर्य्यकी तीक्ष्ण किरणें उनपर दृष्टि न ठहरनेके कारण, स्पष्ट देख नहीं पड़ती, किन्तु उनकी अनुभूतिकी यन्त्रणा सही नहीं जाती।

ट्रामवेके घड़ोंकी जीभ उष्णताके तापसे बाहर हो गई है, वे अब एक डग भी चल नहीं सकते। छकड़ेके घोड़ोंकी जीभ इस प्रकार नहीं निकलती है। इन घोड़ोंकी देहसे ट्रामवेके घोड़ोंकी देहके सदृश शोणितप्रवाह भी नहीं प्रवाहित हो रहा है। यही कारण है कि ट्रामवे नहीं चलती और छकड़े-गाड़ियाँ चल रही हैं।

इसी समय --जिस समय भगवान् सूर्य्यकी किरणें समस्त संसारको भस्म करनेकी इच्छासे, अपने मुखों द्वारा अग्नि-वर्षा कर रही हैं, एक भाड़े-गाड़ीपर सवार हो एक बीबू शोभाबाज़ारकी ओर जा रहे हैं। बाबूका माथा माँगसे सँवारा हुआ है, माँगकी दोनों ओर वीचिवल्लरी चुम्बित तरङ्गायित बालुकाभूमिके सदृश केशदाम है। जैसे नदी-तटकी बालुकामयी तरङ्गायित तटभूमिपर अपचीयमान फेनराशि पड़कर बालुकाकी स्वच्छश्यामलकान्तिको धूलिधूसरवर्णकी बना देती है, वैसेही पथकी रजोराशिने बाबूके मस्तकके तरङ्गायित, मसृण, श्यामलकान्तिके केशदाम पर पतित हो केशगुच्छसमूहकी समुज्ज्वल आभाको म्लान कर दिया है। राजपथकी रजोराशि बाबूके माथेही तक पड़कर निरस्त होनेवाली नहीं; पद्मरागकी तरह भ्रूपर भी न्यस्त है, चम्पक-चूर्णकी तरह नयनपल्लवपर छिन्न रही है; और कहीं कपोल-संलिप्त, कहीं चिबुकविलम्बी, लतायमान फ्रेञ्च फेशनके केशके ऊपर पड़ श्रावणके कदम्ब केशरकी तरह शोभा पा रही है। देहमें कोटके ऊपर जाफ़रानी रङ्गकी चादर शोभा पा रही है। पैरमें बादामी रङ्गका बूट. मेमोंके कपोलोंकी समता पा, कभी-कभी प्रसन्नतासे मचर-मचरकी आनन्दध्वनि करने लगता है। दोनो हाथोंकी दोनों अनामिका और कनिष्ठा अँगुलियोंमें चार अँगूठियाँ पहिने हैं; हाथमें एक लाल रंगका रेशमी रुमाल है और मुखमें? मुखमें,—अरे, यह क्या—मुखमें

आग कहाँसे आई ? नहीं, नहीं, यह तो चुरुट है। तापसे पाषाण फटा जा रहा है, तापसे घोड़े हाँप रहे हैं, किन्तु तापसे बाबूका जी नहीं भरा, इन्हें अभी और तापकी आवश्यकता है। शायद उसी आवश्यकताकी पूर्त्तिके लिये ये अपने मुखसे अग्नि-ताप कलेजेतक पहुँचा रहे हैं।

यह बाबू, हमलोगोंकी पूर्व-परिचिता मालतीके गृहके सामने आकर गाड़ीसे उतर पड़े। क्या वर्षाकी गङ्गाधारमें हिलती-डोलती, डेंगोको पाठकोंमें से किसीने देखा है? जिसने उसे देखा होगा वही बाबूके मातङ्ग-गमनका मर्म समझ सकता है। बाबू, उसी डेंगोकी तरह दोनों बग़लमें हिलते डोलते, मालतीके द्वारके लगे हुए कपाटपर कराघात करने लगे। उस आघातसे कुछ लाभ नहीं हुआ, किवाड़ नहीं खुले। अन्तमें बाबू बहुत जोरसे चिल्लाने लगे—"ओ शङ्करी! शङ्करी, ऐ शङ्खमणि! ओ शङ्खवासिनी"!! प्रभृति कितने आदरके शब्द ह्रस्व, दीर्घ, स्वरित, प्लुत प्रभृति नाना स्वरोंसे उच्चारित होने लगे। अन्तमें कुछ देरके बाद भीतरसे भी "कौन है बाबू?" सुन पड़ा। बाबू बोले "अरे! मैं हूँ, मैं, बैजू, द्वार खोलो।" द्वार खुल गया। मालतीकी मातृ-स्थानीया, वर्षीयसी श्रीमती शङ्करी दासी बाबूके सामने सदेह उपस्थित हो गईं।

बाबूके भीतर चले आने पर शङ्करीने दरवाज़ेको बन्द कर दिया।

यहाँ पर पाठकोंको श्रीमती शङ्करी दासीका परिचय दे देना आवश्यक समझता हूँ। शारीरिक परिचयकी आवश्यकता है क्या? रमणी-मात्रही कुन्तीको आदर्श रख-कर पाली-पोसी गयी हैं। रमणी मात्रही चिर-युवती, स्थिर-यौवना हैं। सुतरां शङ्करीको मैंने वर्षीयसी कहकर दोष-भागी होनेका कार्य्य किया है। इसके लिये मैं शंकरीको पक्षा-वलम्बिनी स्त्रियोंसे क्षमा माँगता हूँ। परन्तु इस समय शङ्करी मालतीको कहूँ, मालतीको माँ है, एतदर्थ उसे वैसा कहनाही पड़ता है। समय पड़ने पर अनेक छोटे भी बड़े होजाते हैं और अनेक बड़े भी छोटे हो जाते हैं। इसी नियमानुसार हमें शङ्करीको भी वर्षीयसी कहना पड़ा। शङ्करीके वर्षीयसी होनेपर भी, उसकी उमर अभी ढली नहीं है। क्योंकि अभी तो वह मरी नहीं—उमर ढलतेही उसे मरना भी पड़ता। शङ्करीके सौन्दर्य्यकी तुलना मैं किसके साथ करूं? अच्छा, सोच-विचारकर कुछ कहनाही पड़ता है। देखो, इतने दिनोंके बीच तुम्हारे यहाँ कितनी दासियाँ आयीं और चली गयी। उन सबोंके वीभत्सरसोत्पादक सौन्दर्य्यका मिलान कर जैसे घृणित और डरावने सौन्दर्य्यकी उत्पत्ति हो, वैसाही सौन्दर्य्य इसका भी था। वह नो हाथके जिस कपड़ेको पहने हुई है वह सप्ताह-सप्ताह धोबीके पाटपर पटका जाकर अपना शायद दूसरा वर्ष व्यतीत कर रहा है। वह अत्यन्त कष्टसे उसके कटितटको वेष्टन कर नाभी-

सरोवरको ढाँप वक्षःस्थलतक पहुँच गया है; निदान कम्बु-कण्ठ-परिभ्रमणके समय हतभागी धोती शङ्करीकी देहकी एक नज़र देख लेती है; अब सह न सकी—अल्पजीवी विचारी धोती अब सही कितना सकती है? लज्जासे भीतर-ही-भीतर मरती हुई विचारी वेणीके पासही जाकर छिप रही। हाय रूप!

यही सुन्दरी मेरे बाबूको लेकर दो महले कोठेके ऊपर न जाकर नीचेही एक घरमें बैठ रही। बाबू बूट-मण्डित पदके साथही उस तख़्तेके ऊपर शङ्करीके साथ बैठ रहे। शङ्करी बाबूके हाथमें एक पानका बोड़ा देकर बोली:—"क्या वैद्यनाथ बाबू! इस दोपहरकी वेलामें क्या करनेको जी चाहता है?"

बाबू—"अरे! जिस ज्वालासे जल रहा हूँ उसी ज्वालाको बुझानेकी इच्छासे तो आया हूँ।

शङ्करी—ज्वाला दूर करनेके पहले प्रलेपका कितना दाम देंगे? उसे तो पहले ठीक कीजिये? सुनते हैं?

बाबू—कहता हूँ तो कि घर बनवानेका खर्च और कपड़ा-लत्ता तथा गहना वग़ैरः बनवानेके लिये दो हजार रुपये दूंगा, महीने-महीने वेतनकी तरह एकसौ रुपयेसे अधिक नहीं दूँगा! परन्तु इतने पर भी दास-दासी, दरवान, रसोइया, डाक्टर, औषधका खर्च अलग दूँगा। क्या इतनेसे नहीं हो सकता है?

शङ्करी—होगा, किन्तु वेतन कुछ और बढ़ाना चाहिये ; डेढ़सौ रुपयेसे कममें हो नहीं सकता। हाँ और मुझे कितना देंगे ?

बाबू—दश मोहरें तुम्हारे चरणोंपर रख तुम्हें प्रणाम करूंगा। मैं केवल मालतीको चाहता हूँ। मालतीके न मिलनेसेही मैं मर जाऊंगा। इस समय जितना मुझसे हो सकता है उतना कहता हूँ। ईससे अधिक अब किसी तरहसे नहीं दे सकता हूँ। बस असल बात मैं यही जानता हूँ कि पहले मालतीको मेरे सामने लाओ, मुझे उसे दिखा दो।

शङ्करी—मालतीको सामने लानेमें अड़चन कैसी ? उसे [illegible] सामने ला देती हूँ। उसे पोस मना लेंगे। उसकी भी नयी जवानी है। आप भी अभी छोकरेही हैं। फिर पोस मनानेमें भी तो कुछ देर न लगेगी !

बाबू—वाहवा, इतने रुपये देनेपर भी पोस मनाना होगा ? तब तो इससे अच्छी मेरी घरवालीही है। यदि मुझे पोसही मनाना रहता—एक लज्जावतीही स्त्रीकी इच्छा रहती तब तो वही थी। जिस समय वह मेरे यहाँ आने लगती है उस समय मालूम होता है मानो कपड़ेकी पोटली आ रही है। रातको बारह बजेके पहले तो उसका दर्शन ही नहीं—दर्शन होनेपर भी इतनी लज्जा कि कभी कुछ बातही मुंहसे नहीं निकालती। कुछ बोलने भी लगी तो यह डर लगा रहता है कि कहीं कोई मेरी बात सुन तो न रहा है। भला मैय्या

करनेकी ज़रूरत नहीं, मालतीको भुलावा देकर अपने बगीचेमें लिवा जायँ, वहाँपर जैसा होगा वैसा किया जायगा और वहाँपर मालतीके रहनेसे वह छोकरा भी इसकी कुछ खोज-ख़बर नहीं पा सकेगा। अब यही सलाह पक्की रही।

बाबू—छोकरा कौन?

शङ्करी—अरे क्या कहूँ बाबू! बड़ी मज़ेकी बात है। उस दिन जब ग्रहण लगा था हम दोनों माँ-बेटी गङ्गास्नान करने गयी थीं। उस भीड़में मालती भूल गई, भीड़ इतनी थी कि सामनेके आदमीको कोई अच्छी तरहसे खड़ा होकर नहीं देख सकता था परन्तु तोभी जहाँतक हो सका खोज की; परन्तु पहले कुछ पता न लगा! पीछे जब स्नान कर ऊपर आयी तो उसे एक छोकरेके साथ देखा। उस समय उससे कुछ बोलना उचित न समझ कर धीरेसे एक इशारा कर घर चली आयी। उस इशारेको वह छोकरा देख न सका! माँ गङ्गाको हज़ार-हज़ार प्रणाम करती और उनसे यह प्रार्थना करती "हे मा गङ्गे! मेरी मालतीको सुमति दो जिसमें वह अपने कर्त्तव्यको स्मरण कर अपनी जीविका निर्वाह कर सके और जिसमें उसके योग्य अच्छा बाबू मिले।" घर आयी! यद्यपि उसके योग्य बाबू मिला परन्तु मेरी बदक़िस्मतीसे वह एक कालेजमें पढ़नेवाला गरीबका लड़का है। वही-वही, जिसका नाम रसमय है! उस दिन मैंने भी उसे पहचान न सकनेके कारण उसका बड़ा आदर किया था। परन्तु पीछे

समझ गयी कि सब भुआही भुआ है। परन्तु यह छोकरी उसेही चाहती है—उसके लिये हरदम उदास रहती है! परन्तु जहाँतक मेरा विचार है—तुम्हें देखते ही, उसका वह ख्याल शीघ्रही दूर हो जायगा!

बाबू—स्त्रियोंका चरित्र बड़ाही विचित्र होता है, इसपरसे उसे रसमयके साथ प्रीति हो गई है। मामला बड़ा बेढब मालूम होता है। अच्छा देखा जायगा, पीछे जैसा होगा वैसा किया जायगा! चलो ऊपर चलें।

शङ्करी—रुपये लाये हो?—रुपये पहले ले लूंगी। मालती अभी मेरी कच्ची उमर की है, बिना रुपयेके किसी पुरुषको उसके पास नहीं जाने दूंगी। रुपये दो!

बाबू—अपना नज़राना तुम लो, एक महीनेका पेशगी उसका मुशाहरा लो, घर मरम्मत करानेके लिये तथा कपड़ा-गहना बनवानेके लिये जो दो हज़ार रुपये देनेको कहा है उसमेंसे आधा इस समय लो। इसके बाद जैसे-जैसे घर बनता जायगा वैसे-वैसे और रुपये देता जाऊंगा। पहले मालतीसे मुलाक़ात कर लूंगा। जिससे मैं उसके हृदयका भाव जान लूं! यदि मुझे देखतेही बनबिड़ालकी तरह गुर्राती हुई मेरी देहपर चढ़ बैठी तो सब किया-धरा मिट्टीमें मिल जायगा।

शङ्करी अन्तिम बातपर बिना ध्यान दियेही बाबूके हाथसे कई-एक नोटोंको लेकर गिनने लगी। इसी बीचमें वहींके जलसे अपना हाथ-मुँह धोकर बाबू मालतीके समीप चलनेको

लिये प्रस्तुत हो गये। कुछ सुरापान कर तैयार हो शङ्करीके साथ ऊपर जाने लगी।

मध्याह्न-समयके सूर्य माथेपरसे कुछ पश्चिमकी ओर हट गये हैं। जिससे मालतीके गृहमें वैशाखकी धूप आ रही है। मालतीको संज्ञा नहीं है। एक इनवेलिड (Invalid) के कोचपर मालती सोई हुई है। दोनों आँखें बन्द हैं, माथेके नीचे बालिशकी तरह दाहना हाथ रखा हुआ है, बायाँ हाथ कण्ठके नीचे हृदयपर स्थापित है। कपोल-युगल, शिशिरस्निग्ध कदलीपत्रकी तरह—अंगुलीस्पर्शसे घर्माक्त मालूम होता है। आज एक महीनेसे रसमयका दर्शन नहीं हुआ है। मालती उसीके विचारमें हेमन्तकी म्रियमाणा मृणालिनी की तरह दिनों-दिन सूखती जाती है। मानो यौवनके लावण्य-रागके ऊपर चिन्ताकी कालिमाने पड़कर कोमल कमलपल्लवके सदृश कपोलयुगलको कुञ्चित कर दिया है।

मालती सोई है, इसी समय शङ्करी आकर पुकारने लगी, —"बेटी मालती! उठो उठो, बेटी। अब सोनेका समय नहीं है।" मानो शङ्करीकी इस पुकारसे स्नेहकी शेफालिका झरी पड़ती है। मालती घबराकर उठ बैठी। माँकी आज्ञा-नुसार मुख, हाथ-पाँव धोकर फिर आ बैठी। शङ्करी फिर बोली:—"मालती! रसमय बाबूके एक मित्र आये हैं, उनकी माँ इस समय बहुत बीमार हैं, उनकी दशा अच्छी

नहीं। उन्होंने बूढ़ा माँको वाराहनगरके एक बगीचेमें गङ्गाके किनारे ला रखा है। रसमय बाबू भी वहीं पर हैं। जो बाबू आये हैं, वह बागीचा उन्हींका है। रसमय बाबू की बड़ी इच्छा है कि तुम इन बाबूके साथ एकबार वाराह-नगरमें आकर मुझसे मुलाक़ात कर जाओ। क्या तुम जा सकती हो? रात होनेके पहले फिर लौट आना। क्या साथमें कोई दासी दूँ?" 'मालती धीरे-धीरे बोली:— "क्या कोई चिट्ठी भी आयी है?' मैं अकेली कैसे जा सकती हूँ? तुम भी चलो न?"

शङ्करीने ज़रासा हँसकर कहा:—"अच्छा यही होगा, मैं भी चलूँगी। तुम कपड़ा वग़ैरः पहनकर तैयार रहो।"

मालती कपड़ा पहनने चली गयी। इसी बीचमें शङ्करीने बैजू बाबूको अपने प्रत्युत्पन्नमतित्व और चतुरताका परिचय दे दिया; एवं उन्हें भी कपटता और मिथ्याका सम्पूर्ण आगम-निगम समझा दिया।

बालक वैद्यनाथकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। नरककी ढालुएँ कीचड़मय मार्गपर वह कभी नहीं चला है। उस राहपर उसकी यह पहली गति है। वह इस समय केवल व्यर्थके दुःखमय भावी सुखको स्मरण करने लगा। वैद्यनाथ बड़े बापका बेटा है। उसके पिता एक विख्यात इञ्जीनियर थे;—विद्याबुद्धिमें विख्यात थे, घूस लेनेमें भी बड़े चतुर थे। जिस समय बूढ़ा मरा उस समय उसकी ज़मीन्दारीकी

आमदनी एक लाख रुपये थी, नगद तथा कम्पनी कागज़की आमदनी दोनों मिलकर पाँच लाख रुपये थी। कलकत्तेमें पाँच बड़े-बड़े मकान हैं, जिनका भाड़ा भी आता है, घरमें कपड़े-गहने भी कुछ कम क़ीमतके नहीं हैं। गाड़ी-घोड़े भी तथा अन्यान्य बहुमूल्य राजसी पदार्थ भी हैं। वैद्यनाथ उनका एकमात्र पुत्र है—उनकी तीसरी स्त्रीके गर्भसे पैदा हुआ एकमात्र पुत्र है। सुतरां वैद्यनाथका उस घरमें बड़ा आदर है। वही वैद्यनाथ आज मालतीके द्वारका भिखारी बड़ा है। इतने पर भी वैद्यनाथकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं!

इसी बीचमें शङ्करी मालतीको सजानेके लिये, उसका शृङ्गार करनेके लिये, ऊपर गयी। अच्छे-अच्छे कपड़ोंको बाहर निकाल कर उसे पहननेके लिये कहा। मालतीने उसके जवाबमें कहा—"छिः माँ! जिसकी बूढ़ी माँ मर रही है, उसके यहाँ क्या इतने साज-सरञ्जामसे जाना होता है?" इतना कहते-कहते मालतीकी दोनों आँखोंमें जल भर गया। मालती मन-ही मन विचारने लगी, विधाताने ऐसा क्यों किया? उनकी मातृ-सेवा करनेका अधिकार तो मेरा है। और जो समय सेवा करनेका है, उस समय क्या मुझे यहाँ रहना चाहिये? न मालूम इस समय उनपर कितना कष्ट बीतता होगा। टप् टप् करके मालतीकी आँखोंसे जल उसकी छातीपर पड़ने लगा।

शङ्करी, वास्तवमें तो विरक्तिसे, किन्तु ऊपरसे अत्यन्त स्नेह दिखलाती हुई बोली—"छिः पगली! यह क्या? अभी यहींसे रोना? पहले चलो देखो कि उनकी क्या दशा है, पीछे जैसा हो, वैसा करना। यहीं—यात्राके समयही यदि अमङ्गल करोगी, तो वहां भी अमङ्गलही होनेकी सम्भावना है। यात्राके समय माँ दुर्गाको नमस्कार करके जाना।"

वैद्यनाथ बाबूसे देरी अब सही नहीं जाती। एक दिन जिस मालतीके मुखको झरोखेसे देखकर वैद्यनाथ बाबू पागल हुए थे, वही मालती आज इनके साथ एक गाड़ीमें जायगी। जिस मालतीके लिये इन्होंने इतने रुपये ठीकरेकी तरह गिन दिये, वही मालती आज इनके साथ एक गाड़ीमें जायगी। क्या इनके लिये इससे बढ़कर आनन्द स्वर्गमें भी है? बैजू बाबू अब सह न सके, नीचेही से आप चिल्लाकर बोले, "देरी क्या हुई है? गाड़ी आगयी है, सब तैयार है।"

शङ्करीने उत्तर दिया,—"आती हैं बाबू, आप ज़रा ठहरिये।"

कुछ देरके बाद शङ्करी मालतीको बाँह पकड़े नीचे आयी। मालती काठकी पुतलीकी सदृश अपनी माँके पीछे-पीछे चली आती है। मालतीके भी हृदयमें आज इस समय आनन्दकी कमी नहीं—कितने दिनोंके बाद अपनी प्यासी आँखोंसे रसमयका दर्शन करेगी—वही मुख, वही आँखें, वही विशाल वक्षःस्थल, वही सुगोल बाहुद्वय, आज फिर इसकी अभागिनी

आँखोंके सामने पड़ेंगी। उनके मुखारविन्दसे आज अनेक आनन्ददायिनी विरहकालकी कहानियाँ सुनेगी। यदि माँका गङ्गालाभ हो गया होगा तो रसमयका रोना सुनेगी, साथ-साथ कुछ यह भी रोवेगी—नहीं नहीं, कुछही नहीं बल्कि खूब रोवेगी। इन्हीं सब भावी सुखोंकी आशाने मालतीको आपेसे बाहर कर दिया। अब मालती अपने मनमें सोचने लगी :—"हाय ब्रह्मा! मैं वेश्याकी कन्या क्यों हुई? यदि मैं आज वेश्याकी कन्या न रहती तो उनकी सब-कुछ थी। अशौचमें अशौच-व्रत ग्रहण करती, उपवासके समय उपवास करती, जब वे कुछ चिन्ता करने लगते उस समय उनकी चिन्ताकी अंशभागिनी होती! इस समय केवल रोनेहीमें मेरा अधिकार रह गया। हाय विधिलिपि!" इतने विचार के रहते भी मालती सुखी है, कारण वह रसमयके उद्देशमें यात्रा करती है।

"चलो, चढ़ो, गाड़ी सामने खड़ी है।" यह कहकर वैद्यनाथने मालतीका हाथ पकड़कर गाड़ीपर चढ़ाना चाहा! किन्तु मालती उसके हस्त-स्पर्शमात्रसे भयभीत हो अलग हट गई! इतनेमें शङ्करीने शीघ्रतापूर्वक पीछेसे मालतीको पकड़कर उसे गाड़ीपर चढ़ा दिया।

यह क्या—मालतीकी दाहिनी आँख फड़क क्यों उठी? आँख फड़कतेही मालती क्यों काँप उठी? हरि हरि! ऐसा क्यों होता है! इतनेपर भी ,मालती भावी सुखकी

आशासे इन सब अशकुनोंकी ओर दृष्टिपात न कर स्थिर हो बैठी। जो सभीके देवता हैं, जो करुणानिधान हैं, उन्हें ही माँ भगवतीने स्मरण किया! मालतीको कुछ साहस हुआ मानो उसके देवता रसमय—उसका वही मुख शतचन्द्रकिरण मध्यस्थ होकर मालतीके हृदयाकाशमें उदय हुआ। मालतीने कुछ बल पाया! गाड़ी चली!

अब यहाँपर मालतीका परिचय दूंगा। मालती वास्तव में वेश्याकी कन्या नहीं है; क्योंकि उसकी माँने वेश्यावृत्ति अवलम्बन नहीं की थी। देवनारायण त्रिपाठी सदर-दीवानी अदालतके एक लब्धप्रतिष्ठ मुख़ार थे। यथेष्ट अर्थोपार्ज्जन कर अपनी पुत्र-कन्याको निश्चिन्त कर उन्होंने देहत्याग किया था। उन्हींका पुत्र नीलाम्बर दत्त उनके बाद हाईकोर्टका वकील हुआ इसे भी ख़ासी आमदनी होती थी। नीलाम्बर दत्त राजशाहीमें किसी कामके लिये गये थे, वहींपर इन्होंने मालतीकी माँको देखा था। मालतीकी माँ गृहस्थकी कन्या किन्तु विधवा थी; नीलाम्बर जिस गृहमें रहते थे उसके पासही मालतीकी माँ एक गृहमें रहती थी। नीलाम्बर जिस मुकद्दमेके सम्बन्धमें राजशाही आये थे उसमें उन्हें अर्थ-लाभ भी खूबही हुआ, साथही मालतीकी माँ भी मिली। पीछे दोनों कलकत्ते आये; नीलाम्बरने मालतीकी माँके लिये एक अलग घर भाड़ेपर ले लिया।

मालतीकी माँका नाम सरस्वती था। वह रूपमें तो

सरस्वती थीही, किन्तु गुणमें भी सरस्वतीही थी। सरस्वती बालविधवा थी, अपने पिताकी 'दुलारी' लड़की थी। सरस्वती अपने पिताके आदरमें रहकर भी लिखना-पढ़ना अच्छा जानती थी; बङ्गला, हिन्दी, अङ्गरेज़ी, संस्कृत प्रभृति भाषाओं को आसानीसे पढ़ और समझ सकती थी। सरस्वती जिस समय पूर्ण युवती थी उस समय बङ्गप्रदेशमें विधवाविवाहका खूबही आन्दोलन मचा था। एक ओर विद्यासागरकी आलोचना और आन्दोलन तथा, दूसरी ओर ब्रह्मसमाजकी ताड़ना और गञ्जना! विधवाविवाहका आईन पास हो गया, विद्यासागरने अपने व्ययसे अनेकों विधवाओंकी सद्गति की। इधर ब्रह्मसमाजमें भी विधवाविवाहकी धूम मच गयी। उस समय विधवाविवाहका इतना आन्दोलन हुआ—इतना प्रचार हुआ कि जिससे स्पष्ट मालूम होने लगा कि अब कुमारी-विवाह कोई नहीं करेगा, जो करेगा सो विधवा-विवाहही करेगा। उस समय शिक्षित बाबू लोगोंकी मण्डलीमें कोई भी इसके विरुद्ध चूँ तक नहीं करता था, ऐसा करनेसे मार खानेकी सम्भावना थी। इसी समय सरस्वतीने नीलाम्बरको देखा। सरस्वती समाचारपत्रोंको पढ़ती थी, नीलाम्बर हाईकोर्टके वकील थे और ब्रह्मसमाजके प्रत्येक उत्सवमें प्रायः सम्मिलित होते थे। नीलाम्बर सरस्वती को देखकर अत्यन्त दुःखित हुए, देशकी दशा देखकर दुःखित हुए, सरस्वतीकी दशा देखकर दुःखित हुए।

समाजको गाली देना आरम्भ किया। हिन्दू-जातिको समुद्रमें डुबा देनेकी नीयतसे भगवानकी उपासना करनी आरम्भ की। सरस्वतीने भी युवक नीलाम्बरको देखा—देखकर रोई—अपने लिये, नीलाम्बरके लिये, भारतवर्षकी अवरोध-प्रथासे अवरुद्ध एवं सकल सुखसे वञ्चित स्त्री-जातिके लिये। और वह उस समयके विधवाविवाहविरोधी नवयुवकोंको गाली देती-देती रोने लगी। इस प्रकार रोने-धोनेके बाद दोनों राजशाहीसे कलकत्ते गये।

नीलाम्बरको स्त्री-पुत्र थे, घर-संसार था; किन्तु नीलाम्बरने सरस्वतीको लाकर एक बाणसे दो चिड़ियोंको मारा। एक चिड़िया अपनी हिन्दू-समाज—कारण वे इस कार्य्यको कर समाजसंस्कारक हुए, शिक्षितोंमें एक गण्यमान्य व्यक्ति हुए; दूसरी चिड़िया—उनकी प्रवृत्ति, उनकी विलास-वासना थी। अपरूप रूपवती और विद्यावती सरस्वतीको पाकर नीलाम्बरने मनुष्य-जन्मकी अनेक साध-वासनाओंको मिटा लिया। सरस्वती रखेल वेश्या भी नहीं थी। अथच सनातन-समाज-सम्मानित भार्या भी नहीं थी। सरस्वती जिस गृहमें रहती थी उसमें नीलाम्बर अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ आमोद-आह्लाद भी करते थे। तथापि सरस्वती इन्हें बहुत चाहती थी, ये भी सरस्वतीको बहुत चाहते थे। मालती इसी सरस्वतीकी गर्भजाता कन्या है। सरस्वतीने अपनी बेटी मालतीको अत्यन्त सावधानीसे लिखना-

पढ़ना, गाना-बजाना सिखलाया था। उसकी बड़ी साध थी, मालतीको किसी सत्पात्रके हाथमें देनेकी ; किन्तु उसकी इस साधकी पूर्त्तिके पहलेही नीलाम्बरकी मृत्यु हो गई। अब सरस्वतीकी आर्थिक दशा बड़ी बुरी हो गई। अत्यन्त दुःखके साथ किसी प्रकारसे उसने तीन वर्ष और मालतीका लालन-पालन किया। मालती जब चौदह वर्षकी हुई तब भीषण हैज़ा रोगसे सरस्वतीकी भी मृत्यु हो गई! मालती तबसे संसारमें अकेली रह गई।

शङ्करीदासी सरस्वतीकी सङ्गिनी थी ; राजशाहीसे शङ्करी सरस्वतीके साथ आयी थी। शङ्करीपर सरस्वती को बड़ाही विश्वास रहता था, रुपये-पैसे प्रायः सब यही रखा करती थी। शङ्करी भी हिसाब अच्छी तरह जानती थी। इसीकी व्यवस्थाके अनुसार चलनेसे सरस्वतीको दुर्दिनमें भी—पति-वियोग होनेपर भी, किसी बातका कष्ट नहीं होता था। सरस्वती अपनी लड़कीको असहाया छोड़ चली गयी ; मालती शङ्करीके मत्थे पड़ी। शङ्करी मालतीको अत्यन्त प्यार करती थी ; किन्तु शङ्करीकी इच्छा थी कि मालती विवाह न कर किसी धनी बाबूकी रखेल-स्वरूप रहे! ऐसा होनेसे शङ्करीका भी कष्ट दूर होता, मालती भी आनन्दपूर्वक अपना दिन व्यतीत करती। रूप-यौवन रहतेही ऐसी व्यवस्था करनेकी सकी इच्छा थी।

किन्तु मालती किसी तरह वेश्यावृत्ति अवलम्बन करनेपर

राजी नहीं होती थी। वह वेश्याओंकी दुर्दशा जानती थी, उसे भली भाँति विश्वास हो गया था कि वेश्या होनेमें निस्तार नहीं है। जो रूप भगवानका छाया-स्वरूप है, जो रूप स्त्रियोंका लक्षण है—उस रूपको बेचकर मालती सुखी होना नहीं चाहती थी ; क्योंकि मालतीकी शिक्षा-दीक्षा अन्य रूपकी थी। वह गृहस्थकी लड़कीकी तरह प्रतिपालिता थी। माँके मुखसे मालतीने रामायणका अध्ययन किया था, महाभारत पढ़ी थी, धर्मकी कहानियाँ सुनी थीं ; मालती पवित्र हृदयकी और सरल स्वभावकी थी। मालती, अपनी माँके जीवनकी सारी बातें जानती थी, उसे रखेल स्त्रियोंके कष्ट भलीभाँति मालूम थे। मालतीकी माँ अत्यन्त रूपवती-गुणवती होनेपर भी—नीलाम्बरके लिये प्राण-त्याग करनेकी इच्छा रखनेपर भी, पत्नीकी मर्यादासे मर्यादापन्न न हो सकी थी। मालती इसे कभी नहीं भूलती थी। अपना पितृ-परिचय देनेमें मालती सदैव संकुचित होती थी, पिताका नाम लेतेही मालती रोने लगती थी। शङ्करी चाहे जितना आदर, यत्न और चातुरी भलेही करे किन्तु किसी प्रकारसे वह मालती को अपनी इच्छाके अनुसार न कर सकी। निदान हार मानकर अपने मनमें स्थिर किया कि जब इसकी पूरी उमर हो जायगी, नयी जवानीकी तरङ्ग जब इसकी देहमें तरङ्गित होने लगेगी, तब यह आपसे आप मेरी राहपर आ जायगी। जिस समय रसमयको लेकर मालती अपने घर

आयी थी, उस समय शङ्करीको प्रसन्नताकी सीमा नहीं
युवक-युवतीको एकान्तमें रख कर उसने छिपे-छिपे उन
दोनोंकी सब बातें सुनी थीं। यद्यपि रसमयको दरिद्र सन्तान
समझकर शङ्करी पहले सिहर उठी थी, परन्तु पीछे मनही
मन उसने विचार किया कि जब मालतीने प्रेम करना जान
लिया है तब अब भावना कैसी? रसमयके ऊपर मालतीकी
जो प्रीति है उस प्रीति-प्रवाहको दूसरी ओर फिरा लेनेमें देरी
नहीं होगी। इसी व्यवस्थाके अनुसार शङ्करी बैजू बाबूको
ले आई थी। इसकी रायमें बैजूबाबू सुपुरुष हैं, उमर भी
एकदम कच्ची है सुतरां प्रथम किशोरी मालती बैजू बाबूको
देखतेही रसमयको छोड़ इन्हें प्यार करने लगेगी। यही
शङ्करीका विचार था।

किन्तु यह विचार व्यर्थ हो गया! मालती सदैव उदास
रहती थी, सर्वदा रसमयके भावमें आत्म ज्ञानरहित रहती थी।
वैद्यनाथको वह नहीं चाहती थी। अन्तमें शङ्करीने अपनी
सूक्ष्म बुद्धि खर्च कर स्थिर किया कि वैद्यनाथ बाबूके बगीचेमें
मालतीको रख छोड़नेसे, आठो पहर उनके साथ रहनेसे,
प्रणयवचनकी मदिरा-धारा रात-दिन मालतीके कर्ण-कुहरमें
ढाल देनेसे, नवयुवती मालती कितने दिनोंतक अपने आपको
सम्हाल सकेगी? वैद्यनाथ बाबूको रूप है, नूतन यौवन है,
अर्थ-सामर्थ्य है, इससे निश्चयही मालती इनकी होगी। यही
कारण है कि छल करके, झूठी बात कह कर, शंकरी

राजीको वैद्यनाथ बाबूके साथ एक गाड़ीमें बाराहनगर भेज रही है, आप भी साथही जाती है।

(७)

रसमय रोया तो अवश्य; किन्तु आँखोंके धाराप्रवाहसे हृदयके सम्पूर्ण क्लेशको विधौत कर अलग न कर सका। रसमय अपने मनुष्य-जन्मकी अधिष्ठात्री देवी—जननीके पास बैठकर रोया; किन्तु उस रोदनसे मालतीका प्रणय म्लान नहीं हुआ; बल्कि उस रोनेसे मालतीकी सुन्दर छवि रसमयके हृदयमें शिशिर सिक्त प्रभात-कुसुमकी तरह और भी परिस्फुट हो उठी! अब रसमय मालतीको देखने नहीं पाता है। देखनेकी इच्छा रहनेपर भी लज्जासे और भयसे मालतीको देखने नहीं जा सकता है! आजकल करते-करते अनेकों दिन व्यतीत हो गये, मालतीको देखनेकी साध रसमयके हृदयमें दिनों-दिन घनीभूत होने लगी! अन्तमें रसमयसे रहा नहीं गया। एक दिन वह मालतीकी खोजमें उसके घर गया, किन्तु वहाँपर ताला बन्द देख किसी पड़ोसिनके मुखसे सुना कि वह बाराहनगर गयी है। सुनतेही रसमय आत्म-ज्ञान-रहित हो गया। रसमय मालतीकी खोजमें बाराह-नगरकी ओर चला!

रसमय! तुम कहाँ जा रहे हो? तुम्हारी अत्यन्त वृद्धा माँ अकेली घरपर हैं; तुमने उन्हें अभी तक इस महीनेका

खर्च नहीं दिया है! कहाँ चले जाते हो? रसमय! तुम्हारी माँका इस संसारमें सिवा तुम्हारे और कोई नहीं है!

रसमय मालतीकी खोजमें चला; सब भूलकर, सब त्याग कर, रसमय मालतीकी खोजमें चला। रातको दश बजनेके बाद बाराहनगरके एक घाटके ऊपर जाकर बैठा। रसमयको इस समय थकावट नहीं मालूम होती, भूख नहीं मालूम होती, पिपासासे उसका कण्ठ शुष्क नहीं होता! रसमय सोच रहा है—"कहाँ, किस बगीचेमें उसको मैं खोज करूँ?—किसका नाम लेकर लोगोंसे पूछूँ?" अन्तमें बहुत सोच-विचार कर मालतीका नाम लेकरही तलाश करना आरम्भ किया। बस, अब रसमय उठ खड़ा हुआ। एक बार इधर-उधर देखकर सीधा उत्तरकी ओर चला। रास्तेमें एक बैलगाड़ीका गाड़ीवान गीत गाता और बीच-बीचमें बैलको पीटता जा रहा था। रसमयने मालतीकी बात उसे कही। गाड़ीवानने उसके प्रश्नके उत्तरमें कहा—"बाबू! तिरयाई बात कहतो लाज ना लागल है? का एकदमें पागलाही हो गैल बाड़? यही उमरमें ई हालत?" राम! राम! रसमयको इस समय मानापमानका ख्याल नहीं; रसमय मनोयोग्य उत्तर न पाकर भी सीधे उसी राहसे आगे बढ़ने लगा। एक कान्सटेबल अर्द्धनिमीलित नेत्रसे, लालटेन हाथमें लेकर इधर-उधर घूम रहा था, इसी समय रसमयके पैरका शब्द सुन कर "कौन है रे!" बोल उठा। लालटेनके

प्रकाशमें रसमयकी आँख-मुखकी भावभङ्गी देखकर सिपाहीने निश्चय किया, कि यह कोई मतवाला है, शराबके नशेमें इधर-उधर घूम रहा है, सुतरां कुछ पानेकी आशासे बोल उठा—"तुम मतवाला है, चलो, थानेपर चलो।" म्लान-मुखसे रसमयने उत्तर दिया, "कहाँ चलूँ?"

इसी समय पीछेसे कोई बोल उठा—"छोड़ दो, इसने शराब नहीं पी।" उस अपरिचित व्यक्तिको नमस्कार कर पुलिसने कहा—"स्वामीजीकी जैसी आज्ञा।" फिर उस अपरिचित व्यक्तिने कहा "चुप।" इसी बातके साथ-ही साथ रसमयके कंधे पर हाथ रख किसीने कहा—"चलिये महाशय! आप कहाँ जायँगे? जहाँ आपको जाना होगा, मैं वहाँही आपको पहुँचा दूँगा।"

रसमय—आप कौन है? मुझ अभागे पर आपकी इतनी दया क्यों है? अन्धकारके कारण मैं आपको देख नहीं सकता; क्या आप संन्यासी हैं?

अपरिचित व्यक्ति—मेरे परिचयसे आपको क्या प्रयोजन? आप कहाँ जायँगे, यह कहिये, मैं वहाँ आपको रख आऊँगा। इस अन्धकारमें आप वहाँ अकेले कदापि नहीं जा सकते हैं।

रस—मुझे कहाँ जाना होगा, इसे मैं भी नहीं जानता; किन्तु एक बगीचेमें एक स्त्री लायी गयी है, मैं उसीकी खोजमें घरसे निकला हूँ।

अ० व्य०—वह स्त्री किस बगीचेमें, किसके बग़ीचेमें, लायी गयी है?

रस—मैं यह भी नहीं जानता; किन्तु उस स्त्रीका नाम जानता हूँ; केवल नाम जान कर यदि उसका पता लगा सकें तो मैं उसका नाम कहूँ। उसका नाम—मालती है।

अ० व्य०—बड़ी विषम समस्या उपस्थित हुई है। अच्छा, उद्योग किया जायगा। आपकी भावभङ्गीसे मालूम होता है कि आपने अभीतक भोजन नहीं किया है, क्या कुछ खायँगे?

रस—इतनी रात गये आप मुझे क्या खिला सकते हैं? मालतीका पता पाकर पीछे जल ग्रहण करूँगा।

संन्यासीने इस व्यापारको समझा या नहीं इसे तो हम कह नहीं सकते; किन्तु उन्होंने रसमयका सङ्ग न त्यागा। दोनों, निस्तब्ध निशाकालको पदशब्दसे मुखरित करते चलने लगे। इन उपरोक्त बातोंके बाद दोनोंमें फिर कुछ भी बात-चीत न हुई। अनिवार्य्य घटनास्रोतमें डूबकर दोनों चलने लगे। अनिवार्य्य घटनास्रोतके वेगसे दोनोंको एक अन-जाने स्थानमें जा पहुँचेंगे;—किन्तु• एक व्यक्ति विह्वल है, एक संयत है। हृदयका घात-प्रतिघात इसीसे सूचित होता है; इसी घात-प्रतिघातसे रसमयके हृदयका मनोवेग नूतन गतिसे प्रवाहित होगा।

बहुतसी राहें लाँघकर ये दोनों गङ्गाकिनारे एक बगीचेके

मकानके पार्श्वमें आकर खड़े हुए। गङ्गाके ऊपरही मकान है, मकानकी पूर्व ओर फल और फूलकी एक फुलवारी है। मकान दो-मञ्जिला है, ऊपरके एक मकानमें एक दीपक जल रहा है। इस समय तक भी—बारह बजनेके बाद तक भी, इसमें लोग जगे हैं, ऐसा मालूम होता है। जिस ओर रसमय और संन्यासी खड़े हैं, उसी ओर एक जङ्गलेके किवाड़को किसीने खोल दिया। उसी आलोकमें रसमयने एक मुखका दर्शन किया, यही मालतीका मुख है। रसमयने संन्यासीको पकड़कर कम्पित कण्ठसे धीरे-धीरे कहा—"यही, यही, मेरी मालती है।" संन्यासी रसमयके मुखको अपने हाथसे बन्दकर बोले, "चुप!" संन्यासी जो देख रहे थे, रसमय वह नहीं देखता था।

(८)

गाड़ी चली; गाड़ीमें आगेकी ओर बैठनेकी जगहपर वैद्यनाथ बाबू बैठे हैं और वैद्यनाथ बाबूके सामने दूसरी ओर शङ्करी और मालती बैठी हैं। गाड़ी चली; सभी निस्तब्ध हैं, केवल गाड़ीके घड़घड़ानेके अतिरिक्त और दूसरा कोई शब्द नहीं सुन पड़ता। गाड़ीमें अन्धकार है, कोई किसीका मुख देख नहीं सकता है; वैद्यनाथ बाबू सिगरेट भी नहीं पीते हैं; किन्तु गाड़ीमें मालतीकी अवस्थितिको अनुभवकर वैद्यनाथ बाबू एक अपूर्व भावसे बैठे हैं। इसी अन्धकारमें शंकरीके अन्धकारमय मुखसे बीच-बीचमें हँसी फूट निकलती

है। शंकरीका दृढ़ विश्वास है कि मालती वैद्यनाथ बाबूकी होगी, इसमें शंकरीकोही लाभ है; यही कारण है कि उसके मुखसे हँसी निकल रही है। मालती, अपनेही मनका भाव ठीक-ठीक आप नहीं समझ सकती है;—कभी भयसे हृदय टूक-टूक हो जाता है, कभी सुखकी आशासे हृदय सातवें स्वर्गतक दौड़ लगा आता है, वा कभी नैराश्यसे शरीर-मन सभी निश्चल हो जाते हैं। मालती भी एक प्रकारसे विचित्तही होकर बैठी है। वैद्यनाथ और मालतीके हृदयस्थ भावोंमें इस समय बहुत पार्थक्य है। वैद्यनाथके कानोंमें अनेक आशा, अनेक बातें कहती हैं। वैद्यनाथकी दृष्टिके सामने विलास अनेक रंगोंसे रञ्जित होकर खड़ा है। वैद्यनाथके हृदयमें वासना, अनेक प्रवृत्तियोंकी उत्पन्न करती है। वैद्यनाथ आत्मज्ञानरहित होगया है। मालतीके कानोंमें, केवल रोदनध्वनिका झङ्कार सुन पड़ता है। मालतीकी दृष्टिके सामने मातृशोकविह्वल रसमयका विविध प्रकारका रूप, खद्योतविकाशकी तरह बीच-बीचमें फूट उठता है। मालतीके हृदयमें केवल नैराश्यका अवसाद है।

गाड़ी, यथासमय बाराहनगरके बगीचेवाले गृहमें आ पहुँची। मालतीको पकड़कर शंकरीने उतार दिया। वैद्यनाथने गाड़ी-भाड़ा चुकाकर शंकरीका हाथ पकड़—भीतर गृहमें प्रवेश किया। अत्यन्त सुन्दर-सजा-सज्जित मकान—एकदम गङ्गाके किनारे परही अवस्थित है। शयनागारसे

कलकलनादिनी मन्दाकिनीका कल्-कल् छल्-छल् शब्द आठों पहर सुन पड़ता है। सारे घर सुसज्जित और अत्यन्त सुन्दर हैं।

मालती, शंकरीका एक हाथ पकड़े ऊपरके बैठनेवाले कमरेमें आ पहुँची। "कहाँ रसमय—कहाँ? उनकी मरण-प्राया बूढ़ा माता कहाँ है—यह मैं कहाँ आयी? यह तो मेरे सर्वनाशका फन्दा मालूम होता है!" उस घरमें कहीं किसीको न देखकर उसके हृदयमें आपसे आप ये प्रश्न उठने लगे। एक क्षणभरमेंही मालती सब ताड़ गयी। भयसे, क्षोभसे, रोषसे, मालती काँपती-काँपती एक मोढ़ेपर बैठ गयी। चतुरा शंकरी मालतीके हृदयकी सारी बातें ताड़ गयी। शंकरीने सोचा—"इसका यह विचार एकही दो दिनमें बदल जायगा।" मालतीको मुग्धाके सदृश देखकर वैद्यनाथने कहा—"अब अफसोस करनेसे क्या होगा? इस समय तुम मेरी हो। रसमय दरिद्र है, कुत्सित है: उसको अपनेही पेटके लिये भात नहीं है? वह तुम्हारा आदर कैसे कर सकता है? तुम, मेरी होओ, मैं भी तुम्हारा हूँगा। मेरा सर्वस्व तुम्हारा होगा।"

यही कहकर बालक वैद्यनाथ मालतीकी ओर बढ़ा। मालती वैद्यनाथको अपनी ओर आते देख उठ खड़ी हुई। शंकरी, मालती और वैद्यनाथके बीच खड़ी होकर बोली—"नहीं, बलात्कार मत करो। इतनी जल्दी क्या पड़ी है!

स्थिर होओ, पहले हाथ-मुख धोओ।" वैद्यनाथ समझ गया, ढंग अच्छा नहीं है, वह निरस्त हुआ।

अब मालती रो उठी। दोनों कजरारी आँखोंसे अविरल जल-धारा गिरने लगी ; आक्षेप नहीं, दीर्घनिश्वास नहीं, गद्गद कण्ठ-शब्द नहीं, मालतीकी दोनों आँखोंसे, सछिद्र घड़ेसे, निकली हुई जलधाराकी तरह अश्रुधारा गिरने लगी। जैसे निदाघ मेघके वर्षणसे पृथ्वी कुछ शीतल होती है, उसी प्रकार इस रोदनसे मालतीका उत्तप्त हृदय कुछ शीतल् हुआ। मालतीने अपनेको कुछ सँभाला।

किन्तु, मालती रोती क्यों है—रोनेसे लाभ? वैद्यनाथ इसी बातको समझानेके लिये मुँह खोलकर बोला—"मालती! अब तुम्हारा रोना वृथा है। तुम्हारी माँको तुम्हारे लिये आजही मैंने अनेकों रुपये गिन दिये हैं। और तुम्हें इस गृहकी मालकिनी बनाकर रखनेके लिये यहाँ लाया हूँ। महीने-महीने अनेकों रुपये तुम्हारी माँको देने पड़ेंगे। तुम वेश्याकी कन्या हो, तुम्हारी वेश्यावृत्ति है, यही कारण है कि तुम्हारे रूप-यौवनको देखकर तुम्हारी माँकी अनुमतिके अनुसार तुम्हें इतने यत्नसे यहाँ लाया हूँ; गृहस्थकी कन्याकी तरह इस समय रोनेसे क्या लाभ? मैं जैसा कहूँगा, तुम्हें वैसाही करना होगा। तुम मेरी बात सुनोगी, तोमैं भी तुम्हारी बात सुनूँगा। इस समय तुम सम्पूर्ण रूपसे मेरे अधिकारमें हो।"

मालतीने सारी बातें स्थिर भावसे सुनकर अञ्चलसे अपनी आँखोंके जलको दूर किया, मानों पहलेको अपेक्षा और भी सम्हल गई। बाद धीरे-धीरे बोली—"ज़रा स्थिर होनेके लिये लिये मुझे दो दिनका आप समय दें। यह व्यवसाय मेरे लिये एकदम नया है। मेरी माँको कल आप उसके घर भेज दें।"

ज़रासा हँसकर बैद्यनाथ बाबूने कहा—"अच्छा, यही होगा; तुम जो कहोगी वही होगा। तुम मेरी होगी तो मैं तुम्हारा गुलाम तक होनेके लिये तैयार हूँ।"

मालतीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। बैठकर बायें पदके अँगूठेके ऊपर दाहिने हाथकी तर्जनीको रख, उदास होकर नख तोड़ने लगी। शङ्करी, मालतीकी भावभङ्गी देखकर अवाक् हो रही। अपने मनमें विचारने लगी—"हा! एक-ब-एक ऐसा भाव क्यों हो गया? क्या वास्तवमें इसका ऐसा भावही हो गया, या यह छलना है। यदि छल हो, तो इसका उपाय? बैजू छोकरा, तो एकदम छोकराही है, भला वह इन छल-प्रपञ्चोंको क्या जानेगा? वह तो कल प्रातःकालही मुझे यहाँसे निकाल बाहर करेगा। यदि मालतीके हृदयमें कुछ दूसरी बात हो, यदि वह रसमयके प्रेममें पागल हो जाय, तब तो बड़ा उपद्रव होगा। लक्षण अच्छी नहीं मालूम होता है। रसमय छोकरेको खोजकर उसके हवाले इसे लगाना चाहिये।

मालतीही मेरी धन-सम्पत्ति है, आगे मालती तो पीछे रुपया-पैसा—आमोद-प्रमोद है! माँ काली, जिसमें कल्याण हो वैसाही करना।

हाय माँ! तुम्हारी दुहाई कौन नहीं देता? पापी भी तुम्हारी दुहाई देते हैं, पुण्यवान् भी तुम्हारा नाम स्मरण करते हैं, वेश्याएँ भी तुम्हारा भरोसा रखती हैं, साधु भी तुम्हें स्मरण कर कृतार्थ होते हैं। मनस्कामना तो सबोंकी पूर्ण होती है, माँ! तुम कैसी हो? तुम्हारे यहाँ कौन पुण्य है, और कौन पाप है?

शङ्करी दूसरे दिन प्रातःकाल कलकत्ता लौट आयी। आतेही उसने रसमयकी खोज की; किन्तु कोई ख़बर न मिली। रसमय जहाँ रहता था, उसका कुछ आभास शङ्करीको मालतीकी किसी एक बातसे मिला था; उसी सूत्रके अवलम्बनसे अत्यन्त कष्टसे रसमयकी वृद्धा माताका ठिकाना पाकर शङ्करी वहाँ पर गयी। वृद्धा रसमयको एकदिन न देख पानेसेही पागलिनीकी तरह हो गई थी। शङ्करीने जातेही वृद्धाकी विशेष शुश्रूषा की, वृद्धाको स्नान कराया। बूढ़ी प्रतिदिन स्नान करनेके बाद रसमयको आशीर्वाद देती थी। अनेक देव-स्थानोंपर जा-जाकर माथा रगड़ती थी; किन्तु आज रसमय समीपमें नहीं है, कलकी रातसेही-उसने रसमयको भोजन नहीं दिया है, उसके शरीरपर उसने अपना हाथ नहीं फेरा है। इस दशामें क्या बूढ़ी बच सकती है?

वह केवल सर पीटने लगी। शङ्करी अब बड़ी विपदमें पड़ी। वह भी खानाहार भूलकर वृद्धाकी सेवामें लग गयी।

यह क्या? शङ्करी ऐसी क्यों हुई? मालती रसमयके लिये पागल होनेवाली है। शङ्करीने मालतीको सम्हालनेके लिये रसमयकी खोजमें आकर उसकी वृद्धा माँकी सेवाका भार अपने सरपर ले लिया। स्नेहका तीव्र विकाश होनेसे मनुष्य ऐसेही हो जाते हैं; शङ्करीको लड़का था, उसने माँ होना सीखा था, शङ्करी किसी माँकी ऐसी दशा देखकर आत्म-ज्ञान-रहित कैसे न होगी? शङ्करीकी मालती जिससे प्रेम करती है, यह उसीकी माँ है। बस शङ्करीके हृदयमें एक प्रलयकी वायु बह उठी। मा दुर्गे! क्या यह भी तुम्हारी-ही लीला है?

दूसरे दिन वैद्यनाथ बाबू बगीचेमें नहीं थे। दिन-भर बाज़ारमें घूमकर सन्ध्याके समय बगीचेमें आये। मालती बगीचेमें दिनभर अकेली थी। उसकी आँखोंमें जल नहीं था, मुखपर हँसी नहीं थी, देहमें उल्लास-भाव भी नहीं था। किसी प्रकार एक काठकी पुतलीकी तरह इधर-उधर घूमकर उसने वह दिन बिताया।

बैद्यनाथ बाबूकी भाव-भङ्गी आज विचित्र देख पड़ती है। बगीचेमें आतेही उन्होंने स्नान किया; स्नानके बाद एक गिलास भङ्ग पी, फिर भोजन किया। भोजनके बाद एक पेग विस्की उड़ी। कभी उमरमें बैद्यनाथ इतना

नशा बर्दाश्त न कर सके; तम्बाकू पीते-पीते उनका माथा घूमने लगा। बैद्यनाथ बाबू बिछौनेपर सो रहे। उस समय रातके बारह बज गये थे।

बैद्यनाथको अज्ञानावस्थामें पड़े देख चतुरा मालतीने लोहेके बक्सपर रखी एक मोटी रस्सी जङ्गलेकी राहसे नीचे लटका दी। अन्तमें अपनी देहके कपड़ेको ठीककर कमरमें भली भाँति बाँध लिया। पहले तो अत्यन्त नीचा देख कुछ डरी; किन्तु पीछे शीघ्रही रस्सी पकड़कर उतरने लगी।

धन्य प्रेम! तुम्हारी महिमा अपरम्पार है!

(८)

सन्यासी सब देख रहे थे—देखकर उस व्यापारको—समझ गये थे। मालतीने जैसेही उतरना आरम्भ किया, ये वैसेही शीघ्रतासे जंगलेके नीचे जाकर रस्सी पकड़कर मालतीको उतारने लगे। उस समय मालती ज्ञान-शून्या थी, दोनों हाथोंके चमड़े फट गये थे जिससे रुधिर प्रवाहित हो रहा था। मुख और आँखें काली हो गई थीं। सन्यासी अन्धकारमें यह सब देख न सके; किन्तु मूर्च्छिता मालतीके स्पन्दनहीन देहको कन्धेपर रखकर अपने दक्षिण हस्तसे रसमयका हाथ पकड़ उसी अँधेरेमें धीरे-धीरे चलने लगे। रसमय निर्वाक् होकर सन्यासीके पीछे-पीछे जाने लगा। कुछ देर चलनेके बाद दोनों गङ्गाके एक बँधे घाटपर आ पहुंचे। एक नावपर चढ़कर संन्यासीने कहा—"प्राणि! उठो, दीपक जलाओ।"

शशिने शीघ्रतासे उठकर दीपक जलाया, नावके भीतर बिछौना बिछा दिया। संन्यासीने इतनी देरके बाद मालतीको मूर्च्छित देहको कन्धेसे उतार कर अत्यन्त धीरे-धीरे बिछौने पर सुला दिया। इसके बाद लम्पके प्रकाशमें मालतीके आँख-मुख देख कर बोले:—"किसी बातका भय नहीं है, नौका खोलो। महाशय! आप बैठें!" रसमय संन्यासीको यह बात सुनकर जहाँ संन्यासी बैठे थे उसके बाहर (जहाँ संन्यासी मालतीके साथ बैठे थे, वह जगह छायी हुई थी) बैठ गया। नाव वहाँसे चल पड़ी।

क्या रसमय यह स्वप्न देख रहा है? ऐसा सुखस्वप्न क्या और कभी इसने देखा है? और यह संन्यासीही कौन हैं? संन्यासियोंके शरीरमें क्या इतना बल होता है? संन्यासीको इतना प्रभुत्व कहाँसे? पुलिसके कानिस्टबलको ये अपनी ताड़नासे चुपकर देते हैं, घाटके मल्लाह बिना बोलचाल किये नाव चला रहे हैं—ये संन्यासी कौन हैं?—ये कौन महापुरुष हैं? ऐसा रूप भी तो मैंने कहीं नहीं देखा है। रसमयके बारेमें इन्होंने कुछ भी पूछताछ नहीं की, मालतीके विषयमें भी कोई अधिक समाचार नहीं पूछा अथच रसमयका यथेष्ट उपकार कर रहे हैं—ये कौन महापुरुष हैं?

नाव कलकत्तेकी ओर जा रही है, शशि मल्लाह नाव खे रहा है। दो डाँड़ चलानेवाले चुपचाप बैठे हैं। गङ्गाकी हवा शरीरमें लगनेसे रसमय कुछ प्रकृतिस्थ हुआ; एवं

संन्यासीको लक्ष्य कर बोला :—"बड़ी प्यास लगी है, ज़रा जल पीऊँगा।" संन्यासी भीतरही भीतर बोले :—"अरे कोई है? इन्हें जल दो। यहाँपर सन्देश* रखा हुआ है, पहले सन्देश दो, पीछे जल देना।" एक डाँड़वालेने चुपचाप यह आज्ञा पालन की। रसमय जलपान कर और स्वस्थ हुआ।

इधर संन्यासी मालतीके मुखपर जलका छींटा बीच-बीचमें देकर पङ्खेसे हवा कर रहे थे। बहुत देरके बाद मालतीको संज्ञा हुई। संज्ञा होतेही संन्यासी शीघ्रतासे बोल उठे—"शशि! दूध तो है न? शीघ्र उसे गरम कर दो।" एक डाँड़वालेने उठकर दूध गरम कर दिया। संन्यासी हाथमें दूध लेकर मालतीको लक्ष्य करके बोले—"माँ! उठो, इस दूधको पीलो!" स्पन्दित नेत्रसे मालतीने आँखें खोलीं, किन्तु एक अपरिचित व्यक्तिको देखकर फिर आँखें ढँक लीं। संन्यासीने फिर कहा—"बेटी! डरो मत, इस दूधको पीलो।" इतना कहनेके साथ-ही-साथ चम्मचसे दूध मालतीके मुखमें देने लगे। दूध पीनेसे मालतीको कुछ बल मिला उसने उठकर बैठनेकी चेष्टा की; किन्तु वह चेष्टा व्यर्थ हुई; निर्बलताके कारण वह उठ न सकी—उसके हाथ और शिरमें बड़ी व्यथा थी। इस बार संन्यासीने बाहर आकर रसमयको भीतर जानेकी आज्ञा दी। रसमयके विस्मयका ठिकाना नहीं।

नोट—एक प्रकारकी बंगला मिठाई।

उसने देखा मल्लाह डँड़वाहे सभी गेरुआ वस्त्र पहने हुए हैं नौकामें औषध-पथ्य सब रखा हुआ है। ये कौन हैं ?

रसमयने नावके भीतर जानेके पहले एक बार संन्यासीकी ओर देखा। संन्यासी उसके हृदयका भाव समझ कर बोले—"किसी बातका डर नहीं, हम लोग यहीं पासहीमें अब ठहरेंगे. वहीं हम लोगोंका आश्रम है। आपकी मालती आरोग्यलाभ कर रही है, जब वह एकदम अच्छी हो जाय तो आपकी जहाँ इच्छा हो उसे वहाँ लिवा जायँ। यह क्या ? इस तरहसे मेरे मुखकी ओर क्यों देख रहे हैं ? स्वार्थत्यागी होकर इसी प्रकार दूसरोंके कष्टको दूर करनाही हमलोगोंका व्रत और धर्म है।" रसमय कुछ समझ न सका, कलके पुतलेकी तरह मालतीके पास भीतर चला गया। मालती रसमयको देखतेही काँप कर उठ बैठी; एवं विस्मयके साथ बोली—"तुम हो। क्या तुम यहीं हो ? क्या तुम्हीं, मुझे लाये हो ? ये लोग कौन हैं ? मैं कौन हूँ ?"

रसमय—ये सारी बातें पीछे होंगी, तुम पहले स्थिर होओ। जिन्होंने तुम्हें मिलाया है, उन्होंनेही संन्यासीको दिया है, उन्होंनेही तुम्हारा उद्धार किया है, मैंने कुछ नहीं किया है।

यही कहकर रसमय आदरके साथ मालतीके शिर पर हाथ रखकर, उसके मुक्त कुन्तलराशिको लेकर खेल करने लगा। मालती अत्यन्त सुखसे आँखें मूँदकर अर्द्धशायित

अवस्थामें चुपचाप हो रही। क्या यह घटनास्रोत है? या लीला—अज्ञेय, अपरिमेय लीला है? क्या जो घटेगा उसी घटनाको घटानेके लियेही यह समावेश है? ऐसेही समावेशसे तो संसार चालित होता है! कुछ देरके बाद फिर मालती बोली :—

"इसी रातमें, यहीं गङ्गाके ऊपर तुमको यहीं अपने मस्तकके पास रखकर सन्यासीकी पदधूलि लेकर यदि मैं मरने पाती तो मेरे लिये यह कितने सुखकी बात होती? क्या मेरी यह बात सत्य नहीं है?"

रसमय—छिः! ऐसी बात अब अपने मुखसे मत निकालो! तुम्हारे लिये मैंने सब कुछ त्याग दिया है, अघटन घटना घटी है, तब तुम्हें मैंने पाया है। तुम इस समय क्यों मरोगी?—मैं तुम्हें मरनेही क्यों दूँगा?"

रसमयकी बात सुनकर मालती एक बार हँस पड़ी। नाव घाटपर आ लगी। ऊपर पालकी लगी थी, मालतीको लेकर सन्यासी बागबाजारके एक मकानमें रसमयके साथ उपस्थित हुए।

(१०)

चतुरा शङ्करीने तीन दिनों तक रसमयकी माकी सेवा कर उसे अपने अधिकारमें कर लिया, केवल अधिकारमेंही किया हो सो नहीं; रसमयके सम्बन्धमें सारी बातें उनसे कह दीं और रसमय मालतीके सन्धानमेंही इधर-उधर घूमा करता है

इस बातको भी उसने कह दिया, अन्तमें एक दिन सन्ध्याके कुछ पहले वृद्धाने शङ्करीको बुलाकर कहा :—

"रांड़की लड़की होनेसेही तो वह वेश्याकी लड़की नहीं हो गई, मैं उसेही अपने घरमें रखूँगी। मेरा बेटा जिसमें सुख पावे मुझे वही करना चाहिये। इस उमरमें, अन्त समयमें मैं उसे कैसे त्याग सकती हूँ। उसका धर्म उसके साथ रहे, मैं उसे अपने घरमें रखकरही सुखी हूँगी।"

शङ्करी—माँ! तुमने इस बातको मुझसे पहले क्यों नहीं कहा! यदि मैं यह जानती होती तो कभी की रसमय बाबू और मालतीको खोजकर आपके यहाँ ले आयी होती। अच्छा, जो होना था, वह तो होही गया। अब कल सुबहही उन दोनोंको खोजकर आपके पास ला दूँगी।

वृद्धा—बहन! इस बातके करनेमें मेरे हृदयको कितना दुःख हुआ है, इसे मैं तुम्हें कैसे समझा सकती हूँ? रसमय मुझ अन्धीकी अवलम्ब-लुकुटिया है, वह लिखना-पढ़ना सीख कर दशमें एक होता, अच्छे घरकी लड़कीसे विवाहकर सुखसे अपना संसार चलाता, मैं उसके लड़के लड़कियोंको देखकर अपनी सब ज्वाला बुझाती—बहन! मेरी तो यह साध थी! रसमयके हाथका जल शुद्ध रहेगा, तो वह मेरे मुखमें गङ्गा-जल देगा। बहन! यही मेरी साध है! किन्तु मेरी किस्मत फूट गई है। मैं अभागिनी हूँ, निठुर ब्रह्मा मेरी साध कैसे पूरी करेगा? इस समय रसमयको त्याग देनेसे पीछे अप-

घातसे मरूँगी! वह उस रांड़से विवाह करेहीगा, कुस्तान होहीगा। तो भला कहो न मुझे उसको अभी त्याग देनेसे क्या लाभ?

यह कहकर वृद्धा रोने लगी। शङ्करी सब समझ गयी—समझकर वह भी रोई। वह भी यदि सरस्वतीके साथ नहीं आती—तो उसको भी घरगृहस्थी रहती, उसको भी सुख होता।

इसी समय बाहरसे कोई 'माँ' कहकर पुकार उठा। वृद्धा जल्दीसे बोल उठी:—"कौन? मेरा रसमय आया! आओ बेटा। आओ! मुझे इतने दिनों तक अकेली छोड़ रखना चाहिये? बेटा! आओ, समीप आओ, आओ, मै तुम्हारी देह-पर अपना हाथ फेरूँ।" यह कहकर बूढ़ी रोने लगी। वास्तव-में रसमयही आया था। माँ-बेटे दोनों चुपचाप बहुत देरतक बैठे रहे। अन्तमें वृद्धा बोली:—"बेटा! क्यों मुझसे छिपाकर कोई काम करते हो? बेटा! तुम जिसको घर लाओगे, वही मेरे घरकी लक्ष्मी होगी! मुझे अब कितने दिन जीना है! मैं तुम्हेंही सुखी देखकर कृतार्थ हूँगी। मैं सब सुन चुकी हूं, सब जानती हूँ। तुम उसे विवाह कर लाओ, मैं उसेही अपने घरमें रखूँगी। तुम्हीं मेरे इहकाल-परकाल हो। मेरे जाति-कुल सब तुम्हीं हो! मेरे आगे तुम्हें लज्जा कैसी?"

रसमयने माँकी सारी बातें सुनीं, सुनकर रो दिया—वह

रोना सुखका था या दुःखका, मैं नहीं कह सकता। किन्तु रसमय माँकी मर्मवेदनाको नहीं समझ सका; जो माँ रसमयको बिना धमकाए कोई बात नहीं कहती थी, जो माँ रसमयकी ज़रासी कुचाल चलते देख कर अपना सिर पीटती थी, जो माँ रसमयको अच्छे घरमें विवाह कर देनेके लिये कितना आकाशपाताल एक करती थी, वही माँ अत्यन्त संयत भावसे "तुम, मैं" कहकर रसमयके साथ बातचीत कर रही है। वृद्धाकी कर्मनिष्ठा, वृद्धाकी आचारबुद्धि, वृद्धाका धर्मभाव अत्यन्त अधिक था—वही वृद्धा अपने एकमात्र सन्तानको विधवाकी कन्याके साथ विवाह करनेके लिये आज्ञा दे रही है। धन्य माँ। ऐसा न होनेसे तुम्हें जगदम्बाकी प्रतिमा कौन कहेगा? मुग्ध रसमय अपनी ऐसी माँका मर्म क्या समझ सकता है?

रसमय वेहया—पागल हो गया है; माँकी बात सुनकर उसने कहा—"माँ यदि तुम्हारी राय है तो मैं उसे कल सुबहही लाऊँगा।"

माँ—विवाह होगा; नहीं—नहीं—हाँ—तो कलही उसे लाओ। किन्तु बेटा! कल उसे लाना होगा, आज यहीं पर रहो। कितने दिन तुमको छोड़े हुए हो गये, कुछ देर तक तुम्हारा चाँदसा मुखड़ा देखते रहनेकी इच्छा होती है। (अपने पास बैठाकर) मेरे गोपाल! मेरे चाँद!! मेरे बेटा!!! तुम मेरी यह इच्छा पूरी करो।

रसमय चुपचाप बैठा था। मानों किसीने उसके कानके पास आकर कह दिया—"रसमय! आज रातको माँकेही पास रहो।"

रसमय माँकेही पास रहा। भोजनादिसे निवृत्त हो माताकेही पास सोनेकी व्यवस्था की। भोजनके बाद रसमय, शङ्करी यहाँ कैसे आयी, इसीको सुननेके लिये बैठा; शंकरीने मानो अनुतप्त होकर अपने आनेके सारे कारणोंको सुना दिया। रसमयने भी संन्यासीके सकल व्यवहार और पलायन-काण्ड शंकरीको सुना दिये। उसने यह भी कहा कि—"मालती इस समय बाग़बाज़ारमें है, अच्छी हो रही है, एक गृहस्थकी कन्या उसकी शुश्रूषाके लिये नियुक्त है।" बात-ही-बातमें रात ज्यादे व्यतीत हो चली, पीछे सभी सो गये।

अत्यन्त प्रातःकाल शंकरीने दौड़ते हुए आकर रसमयको जगाया। वह अत्यन्त व्यस्त भावसे बोली:—"उठो, उठो, तुम्हारी माँकी दशा अत्यन्त ख़राब हो गई है, मालूम होता है शीघ्रही उन्हें गङ्गायात्रा करानी होगी। जल्दी दौड़कर लोगोंको बुलाओ।"

रसमय—बात क्या है? माँ कहाँ हैं? क्या हुआ है?

शंकरी—जो होनेवाला था वही हुआ। रातसे उनके पेटमें कुछ दर्द था। इस समय अचानक हाथ-पाँव सर्द हो

गये हैं, नाड़ीका कहीं पता नहीं। श्वासका लक्षण देख पड़ता है। जाओ, लोगोंको जल्दी बुलाओ।

रसमय दौड़कर लोगोंको बुला लाया, मालतीको भी ले आया। सभी वृद्धाको गङ्गा किनारे ले गये। अत्यन्त प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्तमें रसमयकी पुण्यवती माँने पुण्यतोया भगवती भागीरथीके किनारे स्वर्गारोहण किया। रसमयकी स्त्रीके साथ इस संसारमें उसे नहीं रहना पड़ा। रसमय सदाके लिये माँका विसर्जन कर आया।

रसमय! जो तुम आज फेंक आये हो, उसे अब कभी नहीं पा सकते।

(११)

संसारमें रसमयका अब अपना कहलानेवाला कोई नहीं है, हाँ, केवल स्वर्ण-सूत्रमें बाँधी मालती रही। संन्यासी ने रसमयके श्राद्धश्राद्धका सब जोगाड़ लगा दिया। एक महीनेके बाद रसमय शुद्ध हुआ। रसमयकी दो भावनाएँ हैं। प्रथम भावना—मालतीके लिये। इसको कहाँ रखेगा? इसको साथ रखकर क्या करेगा? द्वितीय भावना—संन्यासीकी। यह संन्यासी कैसे हैं? कोई बातचीत नहीं, तौभी वे मेरे लिये इतना क्यों करते हैं? मेरे लिये इतना क्यों सोच-विचार किया करते हैं? संन्यासीके विषयमें सोचने-विचारनेके पहले मालतीही उसके हृदयको अपनी ओर खींच लेती है। नौकरी-चाकरी कुछ है नहीं, मालतीको साथ रखकर वह क्या करेगा,

उसे कहाँ रखेगा, क्या खिलायगा; किन्तु इस समय शङ्करीने रसमयको यथेष्ट सहायता की। उसने कहा—"बाबू! आपकी माँके साथ रहकर मुझे ज्ञान हुआ है। वे देवी थीं, उन्होंने अपनी इच्छासे देह त्याग की है, बलात्कारसे उन्होंने स्वर्ग लिया है; अब मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता है। मेरे जो कुछ धन-सम्पत्ति है, उसे मालतीको देकर, मैं वृन्दावन जाऊँगी। मुझे रेलखर्चके अभाव: पाँच रुपयेकी आवश्यकता है। सब मिलाकर मेरे पास पाँच हज़ार रुपये हैं, ये सब आपके और मालतीके हैं। मैं यदि मरने लगूँ, उस समय मेरे पत्र लिखनेसे आप लोग कृपाकर अवश्य दर्शन देंगे। अब मैं यहाँ पर नहीं रहूँगी।"

रसमय, शङ्करीकी बात सुनकर अवाक् होगया। उसके मनमें भी एक प्रकारका खटका हुआ। संन्यासीके व्यवहारसे, माँकी हठात् मृत्युसे, शङ्करीकी बातसे, रसमय एक विचित्र प्रकारका होगया है। किन्तु मालतीके रूप, मालतीके तीव्र प्रेमने उसे अभीतक मुग्ध कर रखा है। रसमयको कुछ भी जवाब देते न देखकर मालतीने कहा—"माँ! तुम जब वृन्दावन चली जाओगी तो मैं किसके भरोसे पर यहाँ रहूँगी? मेरा अब हैही कौन? मैं घर-द्वार, चीज़ वस्तु सब कहाँ रखूँगी? किसको दूँगी? इन्हें कौन भोग करेगा?"

शंकरी—जिसके भाग्यमें लिखा है, वही भोग करेगा। बेटी! इसकी भावना हमें नहीं करनी चाहिये। किन्तु

तुम्हारी नयी उमर है, सब कुछ नया है, अपने मनके मुताबिक़ वर पाया है ; तुम्हें जो कुछ है, उसे तुमही भोग करोगी। बेटी! ' मेरा जो कुछ है, वह भी तो तुम्हाराही है। तुम्हारी जो इच्छा हो, वही करना।

मालती—मेरी साध इस जन्ममें मिटनेवाली नहीं। मेरेही कारण बाबू मातृहीन हुए, मेरेही लिये तुम संसारत्यागिनी हुईं, अपने भाग्य-दोषसे मैंने सब पाकर भी खो दिया। निश्चयही ब्रह्माको मुझसे कुछ वैर है, यही कारण है कि मेरी अधूरी साध सदैव अधूरीही रहेगी। संन्यासीने एकदिन कहा था कि—जो जिसका कर्त्तव्य है, उसकी शोभा उसीसे होती है। जिसका जो कर्त्तव्य नहीं, उससे उसकी शोभा नहीं होती। मैं एक प्रकारकी वेश्या की कन्या हूँ, 'वेश्याकीही वृत्ति मुझे अच्छी लगेगी ; कुल-कन्याकासा कुल-व्यवहार मुझसे कैसे किया जा सकता है ?—मुझे अब दुःखही पाना होगा। समाज-में तो मुझे जगह नहीं, किन्तु इसका मुझे कष्ट नहीं, कष्ट केवल इसी बातका है कि मेरे लिये दूसरे दुःख पा रहे हैं। मुझे जो कुछ है, सब बाबूको दूंगी, ये विवाह कर संसारी हों, मैं भी इन्हें देखकर सुखी हूँगी।' इनकी माता भी जिसमें स्वर्गसे-ही देखकर आह्लादित हों। वेश्याके गृहमें जन्म लेनेके पापका यही प्रायश्चित्त है।

रसमय मालतीकी इस बातको सुनकर रो उठा ; क्या कहूँ, इसका निश्चय न कर सकनेके कारण केवल रोने

लगा। मालती रसमयको रोते देखकर विचलित भावसे उसके पास बैठ उसकी पीठपर हाथ रखकर, बोली—"छिः! रोते क्यों हो? तुम्हारा रोना देखकर मैं पागल हो जाऊँगी। रोओ मत—तुम जो कहोगे, मैं वही करूँगी। मेरा इहकाल तुम्हीं हो; और यदि मेरे लिये परकाल है, तो भी तुम्हीं हो। रोओ मत!" यह बात कहते-कहते मालती की भी आँखोंमें जल भर गया। शङ्करी वहां, उस समय रहना उचित न समझ, दूसरी जगह हट गयी, उसकी भी आँखोंमें जल देख पड़ता था।

बहुत देर तक रोने-धोनेके बाद दोनोंने परामर्श कर स्थिर किया कि कलकत्ता त्याग करनाही अच्छा होगा। दूर विदेशमें जाकर दोनों पति-पत्नीकी तरह रहेंगे—अँगरेजी क़ानूनके प्रभावसे विवाहकर पतिपत्नीकी तरह हमलोग रहेंगे, एवं नौकरीकी चेष्टा कर नौकरी करेंगे, उसीसे हम दोनोंकी संसारयात्रा निर्वाह होगी। मुङ्गेरमें रसमयके एक आत्मीय हैं, वे ब्राह्म हैं। रसमयने एम० ए० पास किया है, जब दूसरी कोई नौकरी नहीं मिलेगी, तो बी० एल० पासकर वहीं पर वकालत करेगा। यही सलाह ठीक हुई, परामर्शके अनुसार कार्य्य करनेके लिये उद्योग होने लगा। शङ्करी इन लोगोंके साथ मुङ्गेरमें जाकर कुछ दिनोंतक इन लोगोंके साथ रहेगी, और जब इन लोगोंके रहनेकी सब बात ठीक हो जायगी तो वहाँसे लौटकर वृन्दावन चली जायगी।

रसमयका कार्य्य है। जैसेही ऐसा विचार हुआ, वैसेही रोषसे, क्षोभसे, ईर्षासे, वैद्यनाथका सारा शरीर जलने लगा। वैद्यनाथ बड़े घरका बेटा है; लड़कपनसेही उसकी जैसी इच्छा होती है, वैसाही करता है। इस समय उस इच्छा-पथमें दूसरेने बाधा दी है, वैद्यनाथ बाबू भला इसे कैसे सह सकते हैं? इसपर भी तुर्रा यह कि विलास प्रिय उन्मत्त वैद्यनाथ बाबू मालतीके रूपमें, मुग्ध हैं—एकदम आत्मज्ञान-रहित हैं, वही मालती इन्हें छोड़कर भाग गई है। वैद्य-नाथने प्रतिज्ञा की, मालतीको, चाहे जिस उपायसे हो, घरमें लानाही होगा, रसमयको भी ठीक करना होगा। यही अपने मनमें स्थिरकर वैद्यनाथ बाबू कलकत्ते लौट आये।

कलकत्ते आकर वैद्यनाथ एक महीने तक उनलोगोंकी खोज-खबर लेते रहे; इसके बाद उन्हें रसमय और मालतीका सारा हाल मालूम हो गया। वैद्यनाथ समझ गये कि रसमय इस समय सहाय-सम्पत्तियुक्त है, उसे अब ठीक करना सहज नहीं। किन्तु गोयन्देकी सहायतासे वैद्यनाथ को यह भी मालूम हो गया कि रसमय प्रभृति सभी पश्चिम की ओर शीघ्रही जानेवाले हैं, वैद्यनाथको यही अवसर है। वैद्यनाथने सब प्रबन्ध ठीककर रखा, जिस दिन रसमय रवाना होगा, उसी दिन ये भी जायँगे।

मालती, रसमय, शङ्करी और सन्यासीने पश्चिमको यात्रा की। ये लोग जिस दिन हवड़ा स्टेशनपर गाड़ीमें सवार

हुए उसी दिन, उसी गाड़ीके दूसरे कमरेमें वैद्यनाथ भी अपने दल-बलके साथ सवार हुआ। गाड़ीमें सवार होते हुए वैद्यनाथको किसीने नहीं देखा, किन्तु शङ्करीने देख लिया। इतने रुपये उनके यहाँसे शङ्करीने गिना लिये हैं, तो भी मालती उनको न हुई—और वैद्यनाथ अभी इस विषयमें किसीको कुछ कहता नहीं है; कहनेको कौन कहे, वैद्यनाथ किसीसे मुलाक़ात भी नहीं करता है। यदि वैद्यनाथका पाँच हजार तक खर्च हो जाता तो इसको कोई चिन्ता नहीं, वह रुपयेको मालतीके सामने कोई चीज़ नहीं समझता, वह मालतीको चाहता है—उस मालतीको उसने नहीं पाया। इतने दिनों तक मालतीको पानेकी आशा थी; किन्तु अब वह आशा भी नहीं, अब वह मालतीको पानेके लिये सब कुछ कर सकता है। शङ्करी इसी प्रकार अनेक तरहकी बातें सोचने लगी। वह भलीभाँति समझ गयी कि विदेशमें कोई उत्पात करनेके लियेही वैद्यनाथ हमलोगोंके साथ जा रहा है! इन्हीं सब बातोंको सोच विचार कर शङ्करी भयसे—आतङ्कसे- घबड़ा उठी।

गाड़ी चल पड़ी,—डाकगाड़ी हुहु शब्द करती हुई चल पड़ी। उसके शब्दसे आरोही और मालती अस्थिर हो उठते हैं, कोई किसीके साथ बातचीत नहीं करता—बात चीत कर भी नहीं सकता है; इसी समय शङ्करी संन्यासीके पास जाकर बैठ गयी, बैठकर शङ्करीने वैद्यनाथको

सारी बातें उनसे कह दीं; सन्यासी सब जानते थे, तथापि शङ्करीके मुखसे उन्होंने सब बातें फिर सुन लीं। उन्होंने वैद्यनाथको गाड़ी पर चढ़नेके समय देखा था, वैद्यनाथके साथ कौन-कौन आये हैं, उसे भी लक्ष्य किया था। शङ्करीकी बात समाप्त होनेपर संन्यासीने कहा—"कोई डर नहीं, इसका भार मेरे मत्थे है, तुम चुपचाप बैठो।"

दूसरे दिन १२ बजे सभी काशी पहुँचे; संन्यासीके मतानुसार मानमन्दिरके बगलहीमें मकान लिया गया। वैद्यनाथ भी काशीहीमें उतर गया।

रसमय और मालती संन्यासीजीके साथ हरिश्चन्द्रका महा-श्मशान देखने गये हैं; लौटती बेर केदारनाथका दर्शन करनेकी व्यवस्था ठहराई गयी है। रसमय और मालती संन्यासीजीके साथ अनेक तरहकी बातचीत करते-करते श्मशानके एक पार्श्वमें जा बैठे। वहाँपर वैराग्य-जनित अनेक बातें हुईं। कुछ देरतक शास्त्रालोचना होती रही। मातृ-वियोगके बादसे रसमय सदाही उदास रहता है, मालतीका मुख देखनेसे भी वह उदासीनता दूर नहीं होती।

श्मशानके चारों ओर चिताधूम उठ रहा है, चिताभस्म चारों ओर परिव्याप्त है, चारों ओर क्रन्दन-ध्वनि सुन पड़ती है— ऐसी जगहोंपर हृदयकी उदासीन अवस्थाही वर्त्तमान रहती है। रसमय शून्यमनसे, शून्यदृष्टिसे अनन्तशून्यकी ओर देख रहा है। उसके हृदयका भाव समझकर मालती

एकबार उठ खड़ी हुई, फिर उसी समय रसमयका हाथ पकड़कर वहीं एक प्रस्तर-खण्डपर बैठ गयी। संन्यासीजीने दोनोंको लक्ष कर कहा—"बड़ी कड़ी गरमी है। तुम दोनों थोड़ी देर तक यहीं बैठकर गङ्गा किनारेकी ठण्डी हवा खाओ, ज़रा विश्राम करो। मैं पासहीमें रहनेवाले एक अपने मित्रसे मुलाक़ात कर शीघ्रही आता हूँ। दश-पन्द्रह मिनटमें मैं लौट आऊँगा।" यह कहकर संन्यासी चले गये।

मालतीके रूपमें पागल बने वैद्यनाथ बाबू छायाकी तरह इन लोगोंका अनुसरण कर रहे हैं। एक जगहसे छिपे-छिपे संन्यासीजीको दूसरी जगह जाते देख, वे धीरे-धीरे मालतीके पास आकर खड़े हो गये। वैद्यनाथ बाबूकी इस समय विचित्र मूर्त्ति है। वे वास्तवमें एक सुन्दर पुरुष थे—ऐसी बदनकी बनावट, ऐसा सुन्दर शरीरका रङ्ग, प्रायः बङ्गाली नवयुवकोंमें नहीं देखा जाता। पहले विलासी बाबूके परिच्छेदमें उनकी रूप-ज्योति भस्माच्छादित वह्निकी तरह थी, आज प्रगाढ़-प्रणयकी फूंकसे वह विलासभस्म उड़ गयी है, रूप-यौवनकी अनल शिखा, निर्वात-निष्कम्प प्रदीपकी तरह स्थिर भावसे जल रही है। वैद्यनाथ बाबूके पैरमें जूता नहीं, माथेमें संवारी हुई बुलबुली नहीं, नये फैशनका कोई कपड़ा नहीं, मुखमें चुरट नहीं। बड़े-बड़े केश, कपाल, भ्रू, गण्ड तथा कण्ठ तक लटके हुए हैं। अयत्न-विन्यस्त केशराशिके भीतरसे उनकी आकर्णविस्तृत 'दोनों आँखें' रात-दिन ज्वलित हो

रही है। उनकी नेत्र-दृष्टि सदैव स्थिर रहती है। उस स्थिर दृष्टिसे कोई मनोभाव स्पष्ट नहीं समझ पड़ता। उनके कन्धेपर एक चादर रखी हुई है, जो कमर तक लटकी हुई है, एक धोती जैसे-तैसे पहनी हुई है; शरीरका गुलाबी रङ्ग फूटकर मानों अभी बाहर हुआ चाहता है।

वैद्यनाथ बाबू मालतीको बग़लमें आकर खड़े हो गये। मालती इन्हें देख काँप उठी; रसमयने भी वैद्यनाथको देखा; किन्तु उन्हें देखकर किसीने कुछ भी नहीं कहा। कुछ देरके बाद वैद्यनाथ रसमयकी ओर देख कर बोले:—

"रसमय बाबू! इसमें आपका कुछ भी दोष नहीं। मालतीके लिये सभी सब कुछ कर सकते हैं। जिसको हृदय होगा वह मालतीको देखकर अवश्य, धर्माधर्मज्ञानसे रहित हो सकता है, मेरी भी वही हालत है। पहले मैं आप पर बहुत रञ्ज हुआ था। आपकी हत्या कर देनेकी प्रतिज्ञा की थी। किन्तु अब काशीमें आनेसे मेरा वह भाव नहीं है। मैं, 'अपने दिलसे जानिये, पराये दिलकी बातके अनुसार' आपके हृदयकी सारी बात समझ गया। मालती एकबार मेरी ओर मुख फेरकर खड़ी हो, मैं तुझे देखूँ। मैं केवल तुझे देखनेके लियेही आया हूँ। मुझे पगला समझ कर मेरी हँसी मत उड़ाना।"

मालतीने मरालकी तरह गर्दन टेढ़ी कर वैद्यनाथके मुखकी ओर देखा। ठीक उसी समय दूरपर एक नयी चिता-

जल उठी। उसी आकाशविस्तारी अग्निशिखाकी ज्योतिसे मालतीका मुख ज्योतिर्मय हो उठा। चिताकी लाल नील अग्निजिह्वासे मालतीके आरक्तिम कपोलयुगल पर सौन्दर्य्य अनेक प्रकारके खेल खेलने लगा। वैद्यनाथ अनिमेष नयनोंसे वही देखने लगा। चुपचाप बहुत देरतक देखकर उन्मत्त युवक बोल उठा :—

"आः! मैं मरा, मरा! ऐसा रूप तो कभी देखा नहीं! मेरी बड़ी साध है कि तुझे देखते देखते मैं मरूँ। मेरी चिता-वह्निसे तुम्हारा मुख इसी तरह जल उठे, और सारा संसार उसेही देखे। मालती एकबार मेरी ओर देखो! देखो, मैं कैसा था कैसा हो गया। मालती तुम्हें देखकर और कुछ देखनेकी इच्छा नहीं होती,—तुम्हारे रूपकी स्मृति हृदयपटलपर रख केवल मरनेकी साध रहती है! मालती! तुमने मुझे ऐसा क्यों किया?" इसी समय संन्यासीजी वहाँ आ पहुँचे। इन्हें देखकर मालती सिहर उठी। वैद्यनाथ बाबू लज्जितसे होकर वहाँसे जाने लगे। संन्यासीने वैद्यनाथ का हाथ पकड़ कर वहीं बैठा लिया। बैठकर वैद्यनाथने कहा :—"इस समय मेरा यहाँ पर बैठना अच्छा नहीं। मैंने इतनी देरतक इस भावसे कभी मालतीको नहीं देखा है। मैं जाता हूँ, मुझे माफ करें।"

यही कहकर वैद्यनाथ वहाँसे फिर उठा, संन्यासीने उसे

फिर बिठलाकर कहा :—"अच्छा यदि मालतीको देखनेकी तुम्हारी इच्छा है तो इसे भली-भाँति देख लो।"

वैद्यनाथने हँसकर कहा :—"संन्यासीजी महाराज! मालतीको देखते रहनेसे कभी साध बढ़नेके सिवा घट नहीं सकती। आप निश्चय समझें, मालतीको देखना इस जन्ममें कदापि नहीं हो सकता।" बस इतनाही कहकर वह वहाँसे चल दिया।

वैद्यनाथकी इस दशापर मालतीको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। मालतीके इस पश्चात्तापकी खबर जब रसमयको मिली तो उसे भी कुछ मालतीके प्रति घृणा हुई।

(१४)

प्रणय पारस पत्थर है। जिसका इससे स्पर्श होता है, वही सुवर्ण हो जाता है। प्रणयमें पात्रापात्रका विचार नहीं रहता, धर्माधर्मका विचार नहीं रहता, पापपुण्यका विचार नहीं रहता। प्रकृत प्रणय अपात्रका विचार नहीं रखता, अधर्म नहीं समझता, पाप नहीं मानता। वैद्यनाथके सदृश विलासी भी प्रणयके वेगसे त्यागी—भावुक—हो गया है; मालतीके सदृश वेश्या-कन्या भी प्रणयके प्रभावसे कुलनारीकी तरह संयता हो गई है; और चरित्राभिमानी शिक्षाभिमानी रसमय प्रेम करना सीखकर वैराग्यका समाचार पाने योग्य हो गया है। क्षुद्र मनुष्य-हृदयका भाव-प्रवाह एकबार बाँध तोड़कर बाहर निकल जानेपर पतितपावनी गङ्गाकी तरह

शतमुख प्रसारित कर भावमय भगवान्‌के अनन्त भावसागरमें मिलना चाहता है। उस समय अनन्तके स्पर्शसे सभी अनन्तमें परिणत हो जाता है। क्या रसमयका ऐसा भाग्य है ?

प्रणय गङ्गास्रोत है। समुद्रमें मिलनेकी जगहपर वह शतमुखमें विस्तीर्ण होगाही। रसमयके प्रणयवेगमें त्रिवेणीकी त्रिधारा छिपी हुई है ;—गङ्गारूप मातृभक्ति, सरस्वतीकी तरह शैशवस्मृतिकी सूक्ष्मधारा, पितृभक्ति, एवं धीर, स्थिर अति गम्भीर यमुनाके सदृश नायिका-प्रेम। इन्हीं त्रिधाराओंमें मिल-कर रसमयका प्रेम महासागरकी ओर दौड़ रहा है। वैद्य-नाथके सदृश मत्तमातङ्ग इस प्रवाहमें डूब गया है ; शङ्करीकी तरह मायाविनी इस स्रोतमें पड़कर गल गयी है; और अनुराग-प्रफुल्ला मालती सद्यःस्नाता जलदेवीकी तरह दिव्य-ज्योति दिखलाती हुई ऊर्मिमालाके ऊपर हिलती, डोलती, उतराती घूम रही है !

रसमय प्रेमधारामें पतित हुआ है—रसमय प्रेमकी वेदना अनुभव कर सकता है। यही कारण है कि वैद्यनाथका उन्माद भाव देखकर उसके हृदयस्थ कष्टका विचार कर वह व्याकुल हुआ था। मन-ही मन बहुत रोया था, मालतीको वैद्यनाथके प्रति करुणाकी दृष्टिसे देखनेको कहा था। रसमय प्रगाढ़ प्रेमसे समझ गया है कि प्रेमही प्रेमका मूल्य है—प्रेमका मूल्य न तो व्यक्तिविशेष और न रूपविशेषही है।

यद्यपि अशरीरी प्रेम पहले मर्त्यहीमें कुछ आश्रय पाकर विकसित होता है, किन्तु जिस समय सूर्य्यकिरणकी तरह चारों ओर अपना राज्य विस्तार कर देता है उस समय न तो पात्रकाही विचार रहता है और न रूपकाही विचार रहता है—मर्त्य अमर्त्य हो जाता है। पहले आकाशमें सूर्य्यालोक रँगे मेघके रूपमेंही देख पड़ता है, किन्तु थोड़ीही देरके बाद जिस समय स्वयं भगवान् सूर्य्यका उदय होता है, उस समय वह रँगा मेघ नहीं दीख पड़ता। सूर्य्यकी किरणमें लय हो जाता है। रसमयका रँगा मेघ मालती है, किन्तु इस समय रसमयका प्रणय-सूर्य्य अनन्त आकाशमें उदित हुआ है, यही कारण है कि वह रँगा मेघ देख नहीं पड़ता। मालती रसमयका मर्म इस समय कैसे समझ सकती है? मालती रसमयकी बातोंका भाव इस समय कैसे हृदयङ्गम करेगी?

मालती सोचने लगी—मेरे प्रति रसमयका प्रणयवेग कुछ कमसा मालूम होता है। कारण रसमयने मुझे इस समय पाया है, अपना आग्रह, अपनी आकांक्षा मिटाई है—मालती का अपूर्व्वत्व, मालतीका नूतनत्व, भला, रसमय क्या समझ सकता है? यही सोच कर अभिमानसे मालतीका मुख लाल हो गया। किन्तु मालती मुख खोलकर किसीसे कुछ भी नहीं बोली। मालती रोई भी नहीं, रोनेसे शायद उसका कुछ मङ्गल होता।

वैद्यनाथ चील्हकी तरह मालतीके चारों ओर घूमना

फिरता है। हरदम उसकी आसपासही रहता है। जब वह मालतीको अकेला पाता है तभी उसको एक नज़र देख लेता है, अपने हृदयकी एक बात कह लेता है। वैद्यनाथका उन्माद भाव देखकर उसके प्रति सभी अपना लक्ष्य रखते हैं पर उसकी गति कोई नहीं रोक सकता है। वैद्यनाथको जब इच्छा होती है, तब वह मालतीको आकर देख जाता है। मालती वैद्यनाथको देखकर अब डरती नहीं; वरं उसकी ऐसी अवस्था देखकर, उसकी आंखें कभी-कभी एक-आध जलके बूंद भी गिरा देती हैं। एक ओर तो इस समवेदनाकी सूचना, दूसरी ओर रसमयके प्रति अभिमान! हृदय और मस्तिष्कके इस घात-प्रतिघातसे क्या होगा, कौन जाने?

आजकल रसमय, स्वामीजीके पास बैठकर सदैव शास्त्र-चर्चा करता है। बहुत दिनोंसे—लड़कपनसे हो—यह लिखने-पढ़नेको पसन्द करता था, यह एक प्रकारसे पुस्तकका कीड़ा-ही था। बीचमें मालतीके प्रेमने उसे आत्मज्ञानरहित कर दिया था। इस समय वह उदास भाव संयत हुआ है। रसमयने फिर पढ़नेमें जी लगाया। सङ्गके गुणसे यह अध्ययनरति दर्शनशास्त्रादिको आयत्त करनेके लिये प्रयुक्त हुई है। रसमय दिन-भर स्वामीजीके पास बैठकर ब्रह्म-ज्ञानके विषयमें प्रश्न किया करता है और सन्ध्याके समय अवसर मिलने पर एक खिलवाड़की तरह या तो कभी

मालतीकी ठोढ़ी पकड़कर आदर करता है, या कभी उसकी वेणीबद्ध केशराशिको खोलकर एक मीठे झगड़ेकी सृष्टि करता है। किन्तु अभिमानिनी मालती अपने मन-ही-मन सोचती है कि वास्तवमें यह मेरा सोहाग नहीं है, यह सोहागके आदरका भाव रसमय बाबू आँखकी लज्जाके खातिर दिखाते हैं, ये अब मुझे पूर्व्ववत् प्यार नहीं करते।

सन्यासी महाराज केवल घटनाका पारम्पर्य लक्ष्य किये जाते हैं। किसीसे कुछ बोलते नहीं, केवल रसमयको पाठ देते हैं, उससे पाठ सुनते हैं और अवसर मिलनेपर पञ्चकोशी काशीकी प्रदक्षिणा कर आते हैं।

आज अमावस्याकी रात है, सन्यासी शङ्करीके साथ दुर्गा-जीका दर्शन करने गये हैं, रसमय मानमन्दिरमें जाकर एक पण्डितके साथ ज्योतिषशास्त्रकी आलोचना कर रहा है। मालती घरमें अकेली है। इसी समय वैद्यनाथ आ उपस्थित हुआ। मालतीको अकेली देखकर वैद्यनाथ हँसता हुआ बोला,—

"मालती, आज तुझे मैंने अकेली पाया है। रसमय बाबू इस छतके ऊपर एक पण्डितके साथ न जाने क्या बकवाद कर रहे हैं। मुझे यही मौका मिला है, तुमसे मिलनेका —तुमसे कुछ कहनेका—क्या तुम मेरी दो बातें सुनोगी?"

मालती—"मेरे पास आपका इस तरहसे आना अच्छा नहीं हुआ। मैं इस समय अपनी नहीं हूँ, बल्कि, दूसरेकी

हूँ। वे जानते हैं, कि आप मेरे रूपपर फ़िदा हैं। इन बातोंपर ध्यान देनेसे, विचारनेसे, मालूम होता है कि आपका यहाँपर आना अच्छा नहीं हुआ! रास्ता छोड़िये, मैं बाहर जाऊँ।"

वैद्यनाथ कोठरीके दरवाज़ेके दोनों चौकठोंपर हाथ फैलाये खड़ा था। मालतीकी तिरस्कार-भरी बातोंपर ध्यान न देकर वह बोला—"............मालती, तुमने मुझे पागल कर कर दिया है, इससे मैं सुखी हूँ। पर मेरी मृत्युका सीधा पथ दिखा देनेपर मैं और सुखी हूँगा; डरो मत, मैं तुम्हारी देहपर कभी हाथ नहीं फैलाऊँगा। वह आलोकमय तेजोमय शरीर है। उसपर हाथ देनेसे हाथ जल जायगा। मैं जल जाऊँगा। तुम्हें फिर देख न पाऊँगा। एक बार सोचा था कि रसमय बाबूकी हत्याकर मैं तुम्हें अपनाऊँगा। किन्तु वे तुम्हारे प्रेमपात्र हैं,—मेरे प्रेमीके प्रेमी हैं! मैं क्या उनपर हाथ चला सकता हूँ? मालती! एकबार फिर बोलो, मैं तुम्हारी उस सुधासिञ्चित वाणीको फिर सुनूँ—तुम्हारी मुखभङ्गी देखूँ।"

मालती—"क्या आप सचमुच पगले हो गये हैं?"

वैद्यनाथ—"पागल! इसेही पागल कहते हैं क्या? माँ आयी हैं, बहू आयी हैं, मौसी आयी हैं; वे मेरा पागलपन दूर करनेके लिये और मुझे यथार्थ मनुष्य बनानेकेही लिये आयी हैं। पागल! सचमुच पागल तो मैं होही

गया हूँ, किन्तु मुझे इसीमें बड़ा आनन्द है, सुख है। इस समय यही जीमें आता है कि मेरा समूचा शरीर आँख होता, उसमें पलकें न होतीं, और उसमें पानी नहीं भर आता, तो आँखें गड़ा-गड़ाकर तुम्हें मन-भर देखता, तुम्हारी रूपसुधाका पान करता। मालती! एक बार भी मेरी ओर देखो।"

मालती—"ऐसा न कीजिये, आपके ऐसा होनेपर आपका सबकुछ, धनसम्पत्ति नष्ट हो जायगी।"

वैद्य०—"तुम्हारी भावनाके सिवाय मेरे पास और है ही क्या? तुम्हीं मेरी सब-कुछ हो। तुम्हारे न रहनेसे मैं इस अधम प्राणको कदापि नहीं रख सकता और मेरे न रहने पर मेरी तुम भी न रहोगी! अच्छा, मालती! तथापि मैं मरनेके लिये तय्यार हूँ। मालती! क्या तुम भी मरोगी? क्या तुम्हें मरना आता है? जो तुम्हें मरना आता हो, जो तुम मरना जानती हो, तो आओ हम दोनों एक साथ इसी पतितोद्धारिणी गङ्गामें डूब मरें। मेरे जैसा न कोई मर सकता है और न मरना जानता है! आओ मरें! रसमय बाबू पण्डित होंगे, सन्यासी होंगे और मैं तुम्हें लेकर तुम्हारे साथ मरूँगा। मेरा-तुम्हारा मर जानाही श्रेयस्कर है। उस श्मशानकी बात याद है? अब तुम्हें और मुझे संसार नहीं चाहता। संसार हम दोनोंको आदरकी दृष्टिसे देखना नहीं चाहता, इसलिये चलो, हमलोग डूबही मरें!"

इतना कहकर पागल वैद्यनाथ ज़ोरसे—शीघ्रतासे—तेज़ीसे—भाग गया। मालती, चुपचाप वहीं बैठी रही। वह इस समय बेतरह सोचमें पड़ गई है। उसको दृढ़ विश्वास हो गया कि रसमय बाबू मुझे पहलेकी तरह अब नहीं चाहते। किन्तु उनपर मालतीका प्रेम ज्यों का त्यों पूर्ववत् गाढ़ा बना हुआ है। तमालके साथ कञ्चनी लताकी तरह मालती रात-दिन रसमय बाबूके साथ लिपटी रहना चाहती है, किन्तु अब उसे लिपटी रहनेका अवसर नहीं मिलता। मालती अपने प्रेमसे, अपने हृदयदानसे, रसमयको अपनाया चाहती है, किन्तु उसका अब लक्षण दिखाई नहीं देता। इसीसे मालतीने समझा कि अब रसमय मुझे नहीं चाहते। मालती कुलीनकन्या बनना चाहती है—कुलाङ्गनाके पवित्र आसनपर प्रतिष्ठित होना चाहती है, किन्तु कुलकन्याओंके शान्त, संयत भाव और असीम सहनशीलता मालतीमें कहाँ? मालतीने पुस्तकोंको पढ़ा है,—समाजमें देखा है कि कुलाङ्गनाओंका बहुतही आदर है, यही देखकर वह रसमयकी धर्म-पत्नी होना चाहती थी, इस समय काशीधाममें पत्नीकी तरहही साथ रहती थी, परन्तु मालतीका यौवन इस समय बरसातकी श्रावण-भादोंकी भरी गङ्गाकी तरह दोनों कूलको डुबोनेवाली, वेगशालिनी नदी है—तरङ्गिणी है। रसमय शान्त, संयत और सुशिक्षित हैं। इस प्रखर वेगसे क्या वे अपनेको बचा सकते हैं? अच्छी शिक्षाके प्रभावसे, रसमयको सभी

प्रवृत्तियाँ कुछ-कुछ सिमट गई हैं। रसमय आन्तरिक प्रेम को पाकरही अपनेको कृतार्थ समझते हैं; वे सोचते, मालती अपना आन्तरिक प्रेम मुझपर रखती है, इसीलिये सन्यासीका सङ्ग पाकर रसमय निश्चिन्त मनसे केवल शास्त्रालोचना कर रहे थे; सुतरां मालती "भई गति साँप-छुछुन्दर केरी"का उदाहरण हो रही थी।

वैद्यनाथके पाँवकी धमधमाहट सुनकर रसमय बाबू शीघ्रतासे अपनी कोठरीकी ओर ऊपरसे आये। देखा मालती अकेले बैठी है। उन्होंने तुरत घबड़ाकर पूछा—"मालती, यह किसके पाँवका शब्द मुझे सुन पड़ा? कौन आया था?"

मालती—"वैद्यनाथ बाबू आकर पागलपन दिखला रहे थे, वेही दौड़े चले गये हैं।"

रसमय—"मुझे इसकी खबर पहले क्यों नहीं दी? पागल के सामने अकेली रहना क्या अच्छा है?"

मालती—"वे क्या कह गये हैं, जानते हो? तुम्हारा और हमारा साथ इस संसारको नहीं रुचता, चलो मरें। वे कहते हैं—कि तुम सन्यासी होगे, इसीलिये रात-दिन शास्त्रालोचना किया करते हो। पीछे मुझे छोड़ दोगे। इसीलिये सोच रही हूं कि मेरा मर जानाही अच्छा है। क्या कहते हो? मैं मर जाऊं?"

रस०—"तू मरेगी या मारेगी? छिः! ऐसी बात भी भला कहनी होती है मालती?"

इतना कहकर रसमयने मालतीका मुख चूम लिया। मालती थोड़ी देरके लिये मरनेकी भावना भूल गई।

(१५)

कल सवेरे गङ्गापूजा है; काशीमें गङ्गा-दशहरेके दिन गङ्गापूजा बड़ी धूमधामसे मनायी जाती है। विचार हुआ है कि, रसमय, मालती, शङ्करी और सन्यासी बाबा, ये चारों गङ्गापूजा करके बजरे पर सवार हो, काशीके सभी तीर्थ देखने जायँगे। मालती बचपनसेही मेला-ठेला, उत्सव, पूजा पर्व और समारोह देखना बहुत पसन्द करती थी; रसमय बाबूने उसकी यह इच्छा पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा कर ली है, यही कारण है कि मालती मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो रही है। कहना व्यर्थ है कि रसमय बाबू मालतीसे बहुत प्रेम करते थे, किन्तु जैसा वह प्रेम था, वह मालतीके मनोयोग्य नहीं था; विशेषतः सन्यासी बाबाकी सङ्गति पाकर और शास्त्रचर्चासे उस प्रेमने कुछ सूक्ष्मभाव धारण किया था। फल्गू नदीकी तरह वह प्रेम बालूकी तहमें बह रहा था। मालतीकी देहमें जैसे सुन्दरी-सौन्दर्य्य पूर्णरूपसे प्रस्फुटित हुआ था; मालतीके चित्तमें भी वैसेही रमणी-प्रेमका पूर्ण विकाश हुआ था। उस रूप और उस प्रेमका पूरा-पूरा उपभोग करनेके लिये रसमयको जैसा व्यवहार करना उचित

था, शास्त्राध्ययनके तीव्र प्रभावसे वैसा व्यवहार नहीं कर सकते थे। इसीलिये एकदिन वह प्रेम-शृङ्खल टूटनेपर आ गया था। रसमय बाबूने एक चुम्बनका टांका देकर उस टूटी कड़ीको—सीकड़से जोड़ दिया था। उसी दिनसे रसमय, मालतीके साथ कुछ सावधानीसे रहने लगे। जिसमें कोई भेद न खुले, वैसा व्यवहार करते थे। निदान, दोनोंही ओर कुछ-कुछ सरलतामें त्रुटि पड़ गयी थी। रसमय, मारे डरके, मुंह खोलकर कोई बात नहीं बोलते। मालती मारे अभिमानके, मनके क्षोभको मनहीमें दबाये रखती; इधर का तो यह समाचार था। उधर वैद्यनाथ बीच-बीचमें न जाने कहांसे आकर, जैसे ज्वालामुखी पहाड़, अपने भीतर से, जली हुई अनेक धातुओं और पत्थरोंको धारारूपसे बाहर फेंकता है, वैसेही मालतीके मुंहपर और कानके भीतर अपूर्व प्रेम, अद्भुत आकांक्षापूर्ण बातोंकी गरम-गरम धारा बहा जाता है। मालती, न जाने कैसी हो गई थी, कैसी विह्व-लता और विमूढ़ भावके साथ अपनी डबडबाई हुई आँखोंसे देखा करती थी। उसका मुँह और आँखें देखकर यह नहीं ज्ञात होता था कि, वह क्या देखती और क्या नहीं देखती।

रसमय खानेके बाद अपने शयनागारमें बैठकर पान खा रहे हैं। और एक पुरानी पुस्तकके पन्ने उलट रहे हैं। मालती पासमें बैठकर केवल दीपककी बत्ती उसका देती है,

कोई कुछ नहीं बोलता। कुछ देरके बाद मालती अपनी अँगुलियोंको दीवारमें पोंछकर रसमयकी पुस्तकके वेष्टनका फीता खींचकर बोली—"क्यों जी! क्या पुस्तक देखनाही तुम्हारा सबसे मुख्य काम है? मेरी ओर क्या अब एकबार भी न देखोगे? दिन-भर तो पुस्तकही देखनेसे फ़ुर्सत नहीं, साँझको खाने पीनेके बाद भी क्या पुस्तकही देखोगे? क्या मुझसे भी तुम्हारी पुस्तक सुन्दर है?"

रसमय—"दोनोंही बातें हैं। एक तरहसे सुन्दर भी है, और एक तरहसे नहीं भी है। मैं जबतक जीवित रहूँगा, मेरी पुस्तक भी तबतक मेरे साथ रहेगी। मैं जिस भावसे जिस समय पुस्तककी सुन्दरता भोगना चाहूँगा, भोगूँगा; मैं जबतक जीऊँगा, पुस्तक भी मुझे उतने दिन उसी भावसे चाहे जब मैं चाहूँ, उपभोग-सुख देगी; इस तरहसे पुस्तक तुम्हारी अपेक्षा अधिक सुन्दर है। मेरे सिवाय तुममें कुछ अपनापन है, उस अपनेपनको तुम अपने मनके अनुसार रखो। तुम मुझे धोखा देकर संसार छोड़कर चली जासकती हो, इसी लिये पुस्तककी अपेक्षा तुम हीन हो। और तुम मालती, मेरी मालती हो। सजीव, सचेतन, प्रणयप्रतिमास्वरूप, मेरी मालती हो। इसलिये तुम सबकी अपेक्षा प्रधान हो। इस पुस्तकके पढ़नेसे मालूम हुआ है कि तुम मुझे छोड़ना चाहो तो छोड़ भी सकती हो, इसी लिये तुम्हें छोड़ कर

इस फटी-पुरानी कागजकी पुस्तककी आराधना कर रहा हूँ ? समझी ?"

मालती—"जी हाँ, जो आपकी आज्ञा। बहुत हुआ। यह सब अपनी उस्तादी अलग रखिये। अब आपका दाँव नहीं लगेगा, अब आपको मुझे सतानेके लिये बहुत क्लेश नहीं उठाना पड़ेगा। अच्छा, कल कब चलोगे, किस-किस घाट पर चलना होगा ? वहाँसे हमलोग कब लौटेंगे ? सङ्गमें क्या हमलोगोंके अलावे और कोई जायगा ? लौट आने पर खाने-पीनेका क्या प्रबन्ध होगा ?"

रसमय—"मैं इतने प्रश्नोंका उत्तर एक-साथ नहीं दे सकता हूँ। ठहरो, एक-एक करके सुनो, पहला—जब नावका माझी आवेगा, तब चलेंगे। दूसरा—जहाँ-जहाँ माझी नाव लिये हमलोगोंको ले जायगा, उसी-उसी घाट जायँगे। तीसरा—जब नाव लौटकर हमलोगोंके मानमन्दिर घाट-पर लगेगी, तब लाचार डेरे चले आवेंगे। चौथा—हमलोगों-के अलावे और है ही कौन जो साथ जायगा ? जो आकर हमलोगोंके साथ चलना चाहेगा, वही जायगा। मेघनाद बाबू भी जा सकते हैं। पाँचवाँ—यही अन्तिम उत्तर है, अन्नपूर्णाके आनन्दकाननमें रह कर सवेरेही खाने-पीनेके लिये सोचना व्यर्थ है। आनेपर जो मिल जायगा, वही खायँगे।"

मालती—"हटो, सब बातोंमें जभी-तभी रूखी हँसी मुझे

अच्छी नहीं लगती। सभी बातोंमें तुम मेघनादकी बात क्यों छेड़ दिया करती हो? तुम्हारा मतलब क्या है।"

रसमय—"हाँ, क्या रूठ गई? अच्छा अब कभी न बोलूँगा। मेघनादकी चिन्ता मैं भी रात-दिन किया करता हूँ, तुम भी किया करती हो; फिर हर बातमें उनकी चर्चा छिड़ेगीही।"

मालती—"मालूम हुआ, तुम मुझे अब नहीं चाहते। अब मेरा बोझा और किसीके कन्धेपर देकर तुम अपनी जान बचाया चाहते हो। क्यों ठीक है न? पर याद रखना, इस गदहेका बोझ दूसरा कोई संभाल नहीं सकता।"

रसमय—"मालती! गदहेका बोझ नहीं, ऊँटका बोझ कहो। पहलेसे और आजकल भी ऊँटके ऊपर बहुतही मनमोहिनी सुन्दरी बेगमें चढ़ा करती हैं। ऊँट देखनेमें खराब है, परन्तु बोझा बड़ाही सुन्दर है। बहुत ठीक है। मुझसा कदर्य ऊँट भी न मिलेगा और तुमसा सुन्दर बोझा भी नहीं मिलेगा। मेघनादको देखो, सोचनेकी बात है, इसीलिये सोचना पड़ता है।

मालती—हाँ, आपको बात-चीत करनेका ढङ्ग भलीभाँति मालूम है! पर मेरे साथ ऐसा क्यों करते हैं? संसार अपने-अपने भाग्य पर है। जिसके भाग्यमें जो है वही होगा। मेघनाद बाबूके लिये हमलोग क्यों सोच करें? मैं

यदि तुम्हारी विवाहिता स्त्री होती तो क्या तुम इन बातोंको सोचते? मेघनाद बाबूको मारकर खदेड़ देते।

रसमय—तू मेरी पत्नी अवश्य है। पर काम-पत्नी है, तू मेरी धर्म-पत्नी नहीं हो सकती। सांसारिक नियमानुसार मेरा-तुम्हारा विवाह हो सकता है। आईनके बन्धनसे हम दोनों आबद्ध हो सकते हैं; किन्तु तुम्हें धर्म-पत्नी नहीं बना सकते।

मालती—(बाष्पगद्गद कण्ठसे) क्यों ?

रसमय—तुम्हारे क्योंका उत्तर मैं नहीं दे सकता? अच्छा, जब कुछ कहने दिया, तो सब कह डालूँ। देखो, मैं खुद पापी बन सकता हूँ। उससे बचनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है, तो मैं करही क्या सकता हूँ? किन्तु, प्रकाश्य-भावसे मैं ऐसा कोई काम नहीं करूंगा, जिससे समाजका द्रोही बनूँ। एक हिसाबसे तुम मेरी नज़रमें नारि-शिरोमणि हो सकती हो और हो भी ऐसीही। किन्तु समाजकी ओर होकर देखनेसे मेरीही नज़रमें तुम तुच्छ हो जाओगी। तुम्हारे रूप और गुणसे मैंही मुग्ध हुआ हूँ, मैंही मुग्ध रहूंगा; पर मैं तुम्हें और अपनेको समाजकी अंगीभूत करके समाज द्रोहिताके पापमें लिप्त क्यों हूँगा? आशा करता हूँ कि इस बातको और अधिक समझाकर तुमसे कहनेकी आवश्यकता नहीं, पड़ेगी, इतनेहीसे समझ जाओगी!

मालती, अब अपनेको संभाल न सकी; अपने आँचलसे

दोनों आँखोंको ढँक कर फूट-फूट कर रोने लगी। उसके मनमें बहुत दिनोंसे इस बातकी आशा लगी थी कि वह किसीकी गृहिणी होगी; पर हाय दैव! इस बातमें भी इतनी अड़चन! रसमयने धीरे-धीरे मालतीकी दोनों बाँहें उसकी आँखोंसे हटा दीं, उसके आँसूसे भीगे दोनों गुलाबी गालोंको चूम लिया, उसे खैंच कर अपनी बाँयी जङ्घा पर बैठा लिया, धीरे-धीरे मालतीके बिखरे हुए केशोंको भौंके ऊपरसे हटाते-हटाते धीरे-धीरे बोले--

'मालती! संसारमें सबसे ज्यादा दुःख क्या है, जानती हो? पुत्रका अपमानही माता-पिताके लिये सबसे बढ़कर अपमानका विषय है। सन्तान तुम्हें हुई नहीं, इसलिये वह कैसी वस्तु है, इसको तो तुम अबतक जानती नहीं। मेरी माँ क्यों मरी? मेरा सत्यानाश देखकर, समाजमें मेरे भावी अपमानकी आशङ्कासे। बच्चेके अपमानकी चोट, बड़ी गहरी चोट है। चाहे, हमलोग जैसे विवाह कर लें, हमलोग चाहे जिस भावसे क्यों न रहें, पर तुम्हारे और मेरे बच्चेको, क्या समाज एक पंक्तिमें बैठाकर खिला सकती है—अथवा खाने दे सकती है? हमलोगोंके लड़की हो तो क्या उसका अच्छे घरमें विवाह होगा? हमलोग जो चाहें कर-करा कर संसारसे चल बसेंगे, पर संसारमें पुत्रकन्या छोड़ जानेपर चिरकालके लिये समाजके सामने एक अपमानकी पताका खड़ी कर जायँगे। बेटे-नाती सभी सदा हमलोगोंको कोसते

रहेंगे। क्या यह बात अच्छी है? हमलोगोंकी चिताकी भस्म जिसमें इन सब बातोंको ढँक दे, यही मैं चाहता हूँ। मैं क्यों ऐसा रहा चाहता हूँ, अब तुम बात समझ गई। मेरी दृष्टिमें तुम मेरी सर्वस्व हो, मेरे हृदयकाननकी तुम बन-देवता हो, मेरे इह-जीवनकी आराध्य सामग्री हो; किन्तु समाजकी दृष्टिसे, पुत्रपौत्र आदिकी दृष्टिसे तो ऐसा नहीं! निदान, तुम्हारे मेरे-शरीरके साथ-ही-साथ सब समाप्त हो जाय, यही अच्छा है।

अब मालतीकी आँखोंमें आँसू नहीं, वह अभिमान-भरा रक्त और विस्फारित अधर नहीं वह विलासलोलुप नयनभङ्गी नहीं, ललाटमें, कपोलमें, कण्ठमें, प्रणय और सौभाग्यकी लोहिताभा नहीं, युवजनमनोमोहनी युवती-देहसुलभ, विलास-विकारका लेशमात्र नहीं। मालती एकबारही पत्थरकी मूर्ति बन गई। स्वभावत: लजीली मालती, रसमयकी जङ्घाके ऊपर बहुत देरतक बैठ नहीं सकती थी, बहुधा कोई न कोई हीला-हवाला करके उतर पड़ती थी; आज वह रसमयकी रूखी बातें सुन कर काठपुतलीकी तरह उनकी जाँघपरही बैठी रह गई। शिर नीचा कर, पृथ्वीकी ओर आखें लगा, अगले दोनों दाँतोंसे होठके कुछ हिस्सेको दबा, मालती रसमयकी गोदमें ही बैठी रह गई। बहुत देर पीछे एक लम्बी साँस लेकर मालती, मानों, मन-ही-मन कहने लगी—"बहुत अच्छा, ऐसाही होगा। मेरी चिता-भस्मसेही सब

ढँक जायगा। पर, क्या प्रेम पथमें भी इतना हिसाबकिताब रहता है। इतना हिसाब-किताब रखनेपर क्या प्रेम रह सकता है?"

रसमय—अगर मेरी माँ न मरी होतीं, तो शायद मुझे इतने हिसाब-किताबका विचार नहीं होता। गृहस्थके घरमें गृहिणी या कुलवधू हो कर रहनेकी तुम्हारी तीव्र आकांक्षा न होती, तो जान पड़ता है कि इतने हिसाब-किताबका विचार रखनेकी आवश्यकता न पड़ती। वैद्यनाथ बाबूका प्रेमोन्माद देखकर, उनके चरित्रका अपूर्व परिवर्त्तन देखकर, मेरा विचार स्वच्छ विश्वासमें परिणत हो गया है। मनकी सारी बातें मैंने खोल कर कहदीं, मालती! इस पर तुम खूब ग़ौर कर इसे समझो।"

मालती—गृहस्थकी गृहिणी या कुलवधू होनेकी साध क्या बुरी है?

रसमय—"बुरी नहीं है। पर टूटी पथरीमें जोड़ नहीं लगता। एक कार्य्यकी समाप्ति एक मनुष्यसेही नहीं होती, पुरुषानुक्रमसे कार्य्यकी परिणति और समाप्ति होती रहती है। और जो प्रेम करता है, वह अपना सर्वस्व देकर प्रेम करता है; उसको, भला, और किसी चीज़की साध हो सकती है? अन्य एक स्वतन्त्र वासना पूर्ण करनेके उद्देश्यसे प्रेम नहीं किया जा सकता।

मालती—इधारेही इधारेमें मेरी मांको गाली मत दो;

जो होनेवाला था, वह हो गया। भविष्यमें मैं तुम्हारे मनो-
योग्य काम करनेकी चेष्टा करूंगी। इस समय सोवो।

(२६)

आज गङ्गा दशहरा है—त्रिलोकपावनी भगवती भागी-
रथीकी पूजा है। एक तो काशी, उसपर काशी-पद-तल-
वाहिनी गङ्गाका पूजोत्सव! यात्रियोंकी अत्यन्त भीड़ हुई
है। भीड़के मारे घाटकी सीढ़ियाँ नहीं देख पड़ती हैं—
उनके बदलेमें जहाँ देखो वहीं नरमुण्डश्रेणी। पहले दिन-
की व्यवस्थानुसार रसमय और उनके साथी एक बड़े बजड़े
पर चढ़ गये। खुलनेके थोड़ीही देर पहले वैद्यनाथ बाबू न
जाने कहाँसे आकर फाँदकर उसपर चढ़ गये। उन्हें किसीने
मना नहीं किया, किसीने आदरपूर्व्वक बैठाया भी नहीं।
वैद्यनाथ बाबूका ध्यान इस ओर नहीं है, उनके लिये यही कम
सौभाग्यकी बात नहीं हुई है, कि वे मालतीकी नावपर चढ़ने
पाये हैं। वैद्यनाथ बाबूके पागलपनकी मात्रा भी इस समय
पहलेकी अपेक्षा कुछ अधिक बढ़ गई है। वैद्यनाथ नावपर
चढ़कर पहले बहुत देरतक हाँफते रहे—रोगसे, या पागल-
पनकी झोंकसे, सो हम ठीक नहीं कह सकते। थोड़ी देर
हाँफ कर स्थिर हो बैठे,—इधर-उधर देखकर पीछे नावकी
भीतर मालतीको देख बोले :—

"मालती! यदि आज तुम इस रङ्गीन साड़ीको न पहन

और एक गेरुआ वस्त्र पहनतीं तो अच्छा होता। देखतीं नहीं कि माँ गङ्गाकी भी इस समय सन्यासिनी-मूर्त्ति है— जल गेरुए रंगका हो गया है। ऐसी माँके वक्षःस्थलपर क्या ऐसा रङ्गीन कपड़ा पहन कर बैठा जाता है। देखो, मैं भी एक गेरुए कपड़े का टुकड़ा पहने आया हूँ! आज हमलोगोंके सन्यास ग्रहण करनेका दिन है;—इस समय यह बात तुम्हारी समझमें नहीं आयेगी, पीछे समझोगी।

संन्यासी बाबा बीचमें बैठे थे, वे एक स्थिर भावकी हंसी हँसकर बोले—"वैद्यनाथ बाबू! आप यह कैसी बात कह रहे हैं! अब संन्यास कैसा?"

वैद्यनाथ—यह क्या महाराज! भगवती गङ्गाके ऊपर बैठ, सामने काशीको देख, पाखण्ड करते हो? हाः हाः हाः! जब मैं घरसे भाग चला, उस समय मेरी वह डेढ़ पैसेकी बहू मेरा हाथ पकड़कर बोली—"आज तुम कहीं भी नहीं जा सकोगे! तुम्हारी आँखोंको देखनेसे आज तुम्हारा रंग-ढंग अच्छा नहीं मालूम होता।" मैं उसका हाथ झिटककर बोला—"मारूँगा; छोड़ दो।" वह हँसकर बोली—"क्या अब तक मारना बाकी ही है; लो मारो, मैं तुम्हारा लात, मुक्का, छड़ी, थप्पर, सब सहूँगी, दूसरी कौन सह सकती है?" वह बिचारी मुझसे खूब प्रेम करती है। जब प्रेमके साथ बात-चीत करने लगती है, उस समय उसका मुख कैसा अच्छा लगता है! देखते हो? कैसा मज़ा है! वह मुझे प्यार

करती है, मैं उसे तिरस्कार करता हूँ। नहीं, अब उसे नहीं मारूँगा, आजही मेरा शेष दिन है!

संन्यासी—क्या कहते हो बैजू बाबू! तुम्हारी बातोंका मतलब मेरी समझमें नहीं आता! तुम्हारी धर्मपत्नी तुम्हें इतना चाहती है, और तुम पागलकी तरह इधर-उधर दौड़ते फिरते हो?

वैद्यनाथ—पागलोंकी बातें बुद्धिमान् लोग नहीं समझते! तुम बुद्धिमान् हो, रसमयकी बुद्धि देकर सब मिट्टी करने बैठे हो! हूँ! क्या मेरा अब भी धर्म है? मेरी अब भी धर्मपत्नी है? यह बात नहीं समझते! जो प्रेमसे पागल हुआ है, उसके लिये धर्माधर्म कैसा, बाबाजी? मैं मालतीको प्यार करता हूँ, मालती क्या मुझे प्यार करती है? मैं मालतीके लिये पागल हुआ, मेरी बहू मेरे लिये अकेली पागल हो! कभी ईंटें सजनेका खेल खेला है? एकके ऊपर दूसरी ईंट रखते हुए बहुत ऊँचे तक ईंटोंको सजा दिया है, अन्तमें एक ईंटमें धक्का मारा, बस, एकके बाद दूसरी सब ईंटें धड़ाधड़ गिर पड़ीं। एक ईंटने दूसरीको धक्का दिया, और दूसरीने तीसरीको, बस, सब ईंटोंमें धक्का लग गया—एक दूसरीका धक्का खाकर सब गिर पड़ीं। अन्तमें जब एक भी न बची, तो उनका गिरना बन्द होगया! यहाँ भी वही समझो! प्रेमका व्यापार भी ठीक ईंट सजानेकी तरह है। किन्तु, चाहे जिस ईंटमें धक्का मारो, सब ईंटें

गिर पड़ेंगी ; मैंने धक्का मारा है, मेरे पासकी सभी ईंटें गिर पड़ेंगी।' क्यों, क्या मैं ठीक नहीं कहता ? ओः ! मैं कैसा इस समय समझका भंडार हो गया हूँ ?

संन्यासी, वैद्यनाथकी ओर आँख गड़ाकर देखने लगी। कुछ देरके बाद वैद्यनाथ बाबू फिर बोल उठे :—

"मालती ! इस नवीन गङ्गाजलमें कितना आनन्द है ? नया जल, गेरुए रंगका जल ! गङ्गाका जल ! इस जलमें यदि डूबनेका अवसर मिले, तो सारी ज्वालाएँ बातकी बातमें काफ़ूर-होजायँ। मैं आज डूबूँगा ; अपने मनसे न डूबूँगा, गङ्गा मैय्या डुबा लेंगी। क्या तू भी मरेगी ? क्या तुझे मरना आता है ? रसमय बचे रहेंगे, उनको बचनेकी बड़ी साध है ! पर कहो, हम दोनोंको अब क्या साध रही ? आओ, मरें !"

शङ्करी इतनेमें बोल उठी—"छिः छिः ! बैजू बाबू ! भला ऐसी भी बात मुँह पर लानी होती है ? शिव ! शिव !! गङ्गा मैय्या इस विपदसे हम लोगोंकी रक्षा करें।"

इधर कई दिनोंसे शङ्करी न जाने कैसी हो गई है। रात-दिन वह केवल बुरे-बुरे स्वप्न देखा करती है, और मालतीकी मङ्गलकामनासे विश्वनाथके मन्दिरमें नाक रगड़ आती है।

और मालती ! मालती आज स्थिर, धीर, गम्भीर है ! उसके मुख पर वह लालिमा नहीं है ! कजरारी आँखोंमें वह चञ्चलता नहीं ! वह बिजलीकीसी दमक नहीं। सौभाग्य-

जनित नासिकाका आकुञ्चन-प्रसारण नहीं। ओठपर प्रेमकी हंसी नहीं। आदरकी वह चञ्चलता नहीं। मालती, आज पत्थरकी अपूर्व्व प्रतिमा हो रही है। रसमय बाबू गत रात्रिसे ही मालतीका परिवर्त्तन देख डरसे हो गये हैं। आज गङ्गाके ऊपर, इतने उत्सव-आनन्दके समय भी मालतीको इतनी स्थिर और गम्भीर देख, रसमय बहुतही डर गये हैं! वे धीरे-धीरे सरक कर मालतीके पास जा बैठे। एक कमलका पुष्प मालतीकी नाकके पास ले आकर बोले—"कहो मालती! तुम्हारे मुख और इस कमलमें कितना अन्तर है?"

रूखे भावसे मालती बोली—"मैं नहीं जानती।"

किन्तु, प्रेमियोंके मुखसे चिकनी-चुपड़ी बातें, नयी युवतियोंके कानमें अमृत ढाल देती हैं। मालती, रसमयकी बात सुनकर कुछ सजीवसी हो उठी। रसमय हंसकर बोले—"तुम नहीं जानतीं, मैं कहता हूँ, तुम्हारा मुख-कमल लावण्य-सलिलमें सदाही प्रफुल्लित रहता है; रूपके सैकड़ों दल फैला कर केवल खिल रहा है; उस मुख-कमलको लावण्य-सरोवरसे कोई तोड़कर ला नहीं सकता। और यह जलका कमल, देखती नहीं कि सरोवरसे थोड़ीही मेहनतसे तोड़ लाया गया है!"

मालती—(मुस्कुराकर) दोनोंही कमल एकसे हैं, तुम जब चाहो, इस कमलको अभी गङ्गाजलमें डुबो दोगे। और यह जो जीवन्त कमल तुम्हारे पास बैठा है, उसे भी तुम

गङ्गाजलमें डुबो दोगी, तब घर जाओगी! हाँ, इतना भेद अवश्य है कि यह जलका कमल गङ्गाकी पूजाके काममें आवेगा, और मेरा मुख-कमल गङ्गाके जलको अपवित्र कर देगा।

रसमय—क्षमा करो मालती! मैंने प्रेमके स्रोतमें युक्तिकी बालुकासे बाँध बाँधना चाहा था; मैंने अपराध किया। तुम मेरी हो, यह गङ्गाकी धारमें बैठकर मैं कहता हूँ, तुम मेरी सब कुछ हो।

मालती—कल रातको तुमने ऐसी बातें मुझसे क्यों न कहीं? इसी तरहसे मुझे क्यों न सन्तुष्ट किया? ऐसेही पासमें बैठकर, ऐसीही जल-भरी आँखोंसे, ऐसेही फड़कते हुए ओठोंसे, ऐसेही रञ्जित कपोलोंसे मुझे गोदमें बैठाकर तुमने जो कहा था, वह न कहकर मुझे पाँव तले रखकर यही—इसी प्रकार—क्यों न कहा? बस, अब रहने दो! जो होनेको था, वह हो चुका। भाग्यका स्रोत, सामने बहा जाता है, उसे कोई फिरा नहीं सकता।

रसमय—अरी पगली! क्या बक रही है? आ, नज़दीक आ। क्यों; देखती है न? ज़रासा झगड़ा करके, प्रेमको, कैसा ताज़ा बना लिया।

ऐसा कहकर रसमय बाबू बलात्कार गलेसे लिपटा उसके ओठ, कपोल, आँख, भौंको बड़े चावसे बार-बार चूमने लगे। इतनेमें बाहरसे "देखो; देखो; खबरदार!" कहकर मल्लाहों

ने हल्ला मचा दिया। जल्दीसे रसमय बाबू मालतीको छोड़कर बाहर आ खड़े हुए, साथ-ही-साथ मालती भी बाहर आयी। बाहर आकर दोनोंने देखा कि, पश्चिम आकाशमें काले-काले मेघ छा गये हैं; बड़े जोरकी हवा चल रही है, हरिश्चन्द्रघाटके सामने नाव आगई है, किन्तु अब धारा बड़ी प्रखर है, बड़ी भयावनी ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही हैं; मल्लाह लोग बड़ी-बड़ी कोशिशें करके भी नावको घाटपर ला नहीं सकते हैं। पश्चिमी हवाके वेग और स्रोतकी तेजीसे नाव रामनगरकी ओर चल पड़ी है! इधर मूसलाधार वृष्टि होने लगी। पछाँही मल्लाह लोग, जल पहचानकर खूब नाव खे ले जा सकते हैं, किन्तु आँधी-पानीमें नाव नहीं सम्हाल सकते। एक-ब-एक एक लहरने आकर नावको एक किनारे फेंक दिया। मल्लाह लोग चिल्लाकर बोल उठे,—"बाबू! पानीमें कूद पड़िये, एक आध काठका टुकड़ा पाकर, सम्भव है, आप लोग किनारे लग जायँ, पर नाव उलट जानेपर बचना कठिन है।" इतना कहकर सभी मल्लाह पानीमें कूद पड़े।

वैद्यनाथ बाबू अब तक चुपचाप बजड़ेके एक कोनेमें बैठे थे, अब उठ खड़े हुए, अपनी आँखोंको फाड़-फाड़ कर, दोनों हाथोंको आकाशकी ओर—जहाँ कि मेघोंका घटाटोप था—उठा, उन्मादकी हँसीसे हँसते हुए बोले—"हा! हा! हाः हाः मालती, अब क्या कूचका नगाड़ा बज रहा है! मरनेमें

कितना आनन्द है! लो, हम दोनों शीघ्रही मरें। रसमय बाबू! अब आप मेरी आँखोंके सामने मालतीको गोदमें लेकर आमोद-प्रमाद नहीं कर सकते! मैं अपनी मालतीको अब अपने यहाँ लिवा ले जाता हूँ; आपमें शक्ति हो तो आवें, उसको बचावें।"

यह बात अभी भलीभाँति ख़तम भी नहीं हुई थी कि वैद्यनाथ एक पलभरमें मालतीकी कमर पकड़कर जलमें कूद पड़ा; साथ-ही-साथ और भी जितने उस नावपर थे, वे भी जलमें कूद पड़े। एक विराट् जलोच्छ्वास जलतरङ्गको भेदकर ऊपर उठा, थोड़ीही देरके बाद उस अनन्त जलराशिमें सब ढँक गया।

यद्यपि जलमें सभी कूद पड़े किन्तु केवल शङ्करी बजड़ेके एक कोनेमें बैठी हरिनाम ले रही है। जब सभी जलमें कूद पड़े तब शङ्करी बोल उठी:—"दीनानाथ! यदि मरनाही है तो यहींपर बैठी-ही बैठी क्यों न मरूँ? जबतक बन पड़ता है, समय मिलता है, तुम्हारा नाम जप लूँ! इस देहके समाप्त होनेमेंही कल्याण है! तुम्हारी जैसी इच्छा हो मुझे वैसीही रखो। संसारमें एक बन्धन था, वह सोनेकी साँकल—बन्धन—मालती मेरी आँखोंके सामने जलमें कूद पड़ी। और क्या! अब मैं अपना काम करूँ।"

उपसंहार ।

अब आँधी-पानी बन्द हो गया है; दशहरेका पानी कुछ बढ़ गया है। राजघाटको रेतीपर संन्यासी बाबा बैठे हैं, उनके पासमें रसमय और सामने वैद्यनाथ और मालतीकी मृत देह, आपसमें लिपटी हुई पड़ी है; वह आलिङ्गनका बन्धन इतना गाढ़ा है, कि उन दोनों लाशोंको अलग-अलग करना कठिन है! रसमयकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है, वे पागलसे हो रहे हैं! संन्यासी बाबा रसमयको रोते देख, बड़े कोमल स्वरसे बोले:—"रोने-धोनेके लिये अभी बहुत समय आगे पड़ा है, अब इन सबोंकी दाहादि क्रियाका बन्दोबस्त करो! मझरी आदमी बुलाने और लकड़ी लाने गई है, भाग्यवश वह नावमें बैठी रह गई थी, इसीलिये उसने हमलोगोंको खींचकर बाहर निकाला, नहीं तो सभी डूब मरते! जगदम्बाकी कृपा!"

क्षणभरके बाद आदमी और लकड़ी वगैरः सब आ पहुँचा! रसमयने चिता बनायी, वैद्यनाथ और मालतीको एक साथ चिताके ऊपर उठाकर सुला दिया गया। सबोंने मिलकर ईश्वरका नाम ले चितामें आग लगाई! चिताकी

ज्वाला आकाश भेदकर ऊपर उठी। मालती और वैद्यनाथ, इस युगल जोड़ीकी ज्वाला चिताकी ज्वालामें मिलकर अनन्त आकाशमें विलीन हो गई!

रसमयका सब बखेड़ा दूर हुआ; शङ्करी भी संसारकी चिन्ताज्वालासे जलकर खाक हो गई! संन्यासी बाबा रसमयका हाथ धरकर बोले:—"आओ भाई! श्मशान-घाटपर स्नानकर-हमलोग अब त्यागी हो जायँ। जो व्रत मैंने लिया है, तुम्हें भी उसेही ग्रहण करना होगा! आओ अब क्या! संसारका सुख तो खूब भोग लिया! अब चलो हम-लोगोंके मठ है, जमात है, गुरु हैं, परन्तु तुम्हारे ऐसा बुद्धिमान् भाई नहीं है! जगदम्बाने वह भी देदी दिया! स्त्रीका कार्य सिद्ध होगा; देखो, संसारको एकदम भूल जाना ही सुख है और वही मनुष्यत्व भी है! भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र व्रजमें रूपकी विविध लीला करके मथुरामें जा राजा हुए थे! व्रजलीला, रूपलीला, सबको एकबारगी भूल गये थे! जो चली गई वह विस्मृतिके अन्धकूपमें सदाके लिये निमग्न हो गई। आओ, आओ, मेरा हाथ पकड़ कर फिर संसारमें प्रविष्ट हो, फिर हमलोग पठनपाठनकी नयी दूकान खोलें! पर इस बारकी दूकानदारी औरोंके लियेही करेंगे; जिसमें इतने दिनों तक जो शास्त्राध्ययन किया वह सार्थक हो।"

रसमयकी आँखोंमें अब आँसू नहीं। बालककी तरह